श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : ६ • अंक : १

अराजकता महान् पाप है

जहां अराजकता फैली हो, वहां कोई धर्म नहीं टिक पाता। सबलोग सर्वथा एक दूसरेको खा जानेके लिए उद्यत रहते हैं। जहां अराजकता फैली हो किसीका रहना मुश्किल होता, वहां रहना भी नहीं चाहिए। अराजक स्थितिसे बढ़कर कोई अत्यन्त पाप-पूर्ण अवस्था हो नहीं सकती है। जहां अराजकता फैली हो, वहां धन, धर्म और स्त्री कोई अपने पास रह जाय इसका भरोसा नहीं है। अराजकता-पूर्ण स्थितिमें अदासको भी दास बना लेना स्त्रियोंका बलपूर्वक अपहरण कर लेना, तथा बलवानों द्वारा दुर्बलोंका सताया जाना साधारण-सी बात हो जाती है। मात्स्यन्यायकी प्रवृत्ति हो जाती है।

शान्ति०

[महाभारत राजधर्म० अध्याय ६७ से]

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला

परामर्श-मण्डल

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

श्रीजनार्दन भट्ट एम०ए०

श्रीहितशरण शर्मा एम०ए०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

स० सम्पादक

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

वर्ष : ६ अङ्क : १
अगस्त, १९७०

वार्षिक शुल्क : ७.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(अगस्त १९७०)

★

श्रीकृष्ण भगवान्‌को कोटि-कोटि प्रणाम

मथुरामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पावन जन्मभूमिके उद्धारार्थ महामना महर्षि मदन-मोहन मालवीय महाराजके प्रबल प्रयत्नों और दानवीर सेठ जुगलकिशोर बिरलाके सहयोगसे जो सफलता मिली और जितना निर्माण-कार्य हो चुका है, उसे देखकर मुझे परम प्रसन्नता हुई। भागवत-भवनकी जो महान् योजना डालमियाजीके धनसे प्रगति कर रही है, वह भारतके गौरव और गर्वकी वस्तु हो जायगी।

स्वामी रामचन्द्र वीर
संस्थापक : पञ्च खण्ड पीठ, विराट नगर
जयपुर (राजस्थान)

वर्षोंकी साध आज पुरी हुई। भारतीय प्राचीन इतिहासमें भगवान् कृष्णकी क्रान्ति-कारी भूमिका—राजतन्त्रके विरुद्ध विद्रोह और प्रजातन्त्रकी स्थापना—एक अमिट एवं अविस्मरणीय कथा है। इस नाते मैं उनका बचपनसे भक्त रहा हूँ। आज उनके जन्मस्थानको देखकर धन्य हुआ। वे महामानव थे। आजकी स्थितिमें उनका और उनकी देनका प्रयोग संयुक्त भारतीय राष्ट्रीयताकी स्थापनामें करना चाहिए। इस स्थानका रख-रखाव आदर्श एवं प्रेरणादायक है।

झारखण्डे राय
संसद-सदस्य (लोकसभा)
५०, नार्थ एवेन्यू, नयी दिल्ली

जन्मभूमि-जैसे स्थान संसारमें कम ही हैं। इन स्थानोंके जितने बार भी दर्शन हो सकें, थोड़े हैं।

व्रजराज किशोर
डी० आई० जी० एन्टीडेकैटी
आगरा

आज दिनांक ९-७-७० को श्रीकृष्ण भगवान्‌की जन्मभूमिके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्षोंकी मनःकामना आज पूर्ण हुई। यहाँका वातावरण मनको अत्यन्त शान्ति प्रदान करता है। मनुष्य ऐसा लगता है जैसे कि वह सांसारिक झंझटोंसे छूटकर एक दूसरे ही लोकमें पहुँच गया हो। खास तौरपर भजनसे अत्यन्त ही प्रसन्नता मिलती है। मैं भागवत-भवनके सफल निर्माणके लिए अपनी शुभकामना प्रगट करता हुआ आशा करता हूँ कि यह एक विश्वविख्यात स्थान बनेगा।

धीरेन्द्रमोहन मिश्र
नगराधीश, मथुरा

इस पवित्र जन्मभूमि-स्थानके पुनरुद्धारका कार्य देखकर प्रसन्नता हुई। यहाँके दर्शनसे बहुत शान्ति मिली।

प० वि० गोले
मण्डल अधीक्षक, सेन्ट्रल रेलवे
झाँसी

One is impressed by the friendship of these Swamis; religion is not in buildings, but in the minds & hearts of its believers. The life of a religion is thus in the life of the Bhakta, and the life of Bhakti is much in evidence here. Best wishes for a successful completion of the building of the Bhagwat Bhawan, the "Home of the Blessed one."

Leo M. Pruden
Assist. Professor, Dept. of Religious Studies,
Brown University
Providence, Rhode Island (U. S. A.)

Visited the birth place of Lord Krishna, today, in the evening and was much pleased to see that it is being properly preserved now-a-days. Religious and cultural history of India is closely linked up and thousands of Souls get peace in mind

in worshipping Lord Krishna and visiting this site, of great importance to all Indians. The place should be developed and properly preserved as a precious heritage of our nation.

Apurba Lal Majumdar
Deputy Speaker
West Bengal

Words would be wanting to describe this place of birth of Lord Krishna. The serene atmosphere, the cleanliness— which are wanting in other temples of worship, would make the most blasphamious man to turn to devotion. The place is entrusted to a very able person like Shri Girdhari Lal Chaturvedi who almost takes care of it as a trusted devotee. I wish the efforts of constructing Bhagwat Bhawan will be successful.

A. W. Kanmadikar
Judge, Industrial Court (M. P.)
Indore

It is a great pleasure that the old temple of Krishna's birth place is being regained. Krishna has given inspiration to millions and would continue to do for time immemorial. This temple would serve us remembrance of what was in the past.

H. D. Bhaumik
Chief Engineer, N. E. Rly.
Gorakhpur

श्रीहरिः

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखोंद्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● **नियम :** उद्देश्यमें कथित विषयोंसे सम्बद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें छापने, न छापनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हासिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज-वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एक बार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकोंको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● **विज्ञापन :** इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
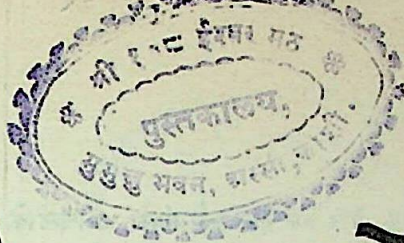
वर्ष : ६] मथुरा, अगस्त १९७० [अङ्क : १

मेरा अनुस्मरण और युद्ध

मुझे सदा याद रक्खो और युद्ध करो—यथावसर प्राप्त कर्तव्यका पालन करो। स्मरण मनसे होता है और कर्तव्य-पालन तनसे। जहाँ मन वहीं तन। मनुष्य शरीरसे कहीं भी रहे, कुछ भी करे, जहाँ उसका मन है, वहीं उसकी वास्तविक स्थिति है। मनकी भावनाके अनुसार ही क्रिया फलवती होती है। यदि हम किसीकी मृत्यु-कामनासे कोई जप, तप या अनुष्ठान करते हैं तो वह पूजन भी हिंसा है। यदि लोककल्याणकी भावनासे आततायी और लुटेरोंका वध करते हैं तो वह प्रत्यक्ष हिंसा भी पुण्य कर्म है। मुझे याद रखते हुए जो कर्म किया जायगा वह मेरे लिए, मेरी प्रसन्नताके लिए होगा। उस कर्मसे मेरी आराधना होगी और आराधक अवश्य मुझे ही प्राप्त होगा। मेरी निरन्तर स्मृतिसे उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा और उस शुद्ध अन्तःकरणमें दुर्विचार या दुर्भाव नहीं उठ सकेंगे। फिर वह जो कुछ करेगा, मेरी आज्ञा समझ कर करेगा। उस कर्मके कर्तृत्वका अहंकार उसे नहीं होगा, वह यही मानेगा कि 'भगवान् मुझसे यह कर्म करवा रहे हैं।' यही सोचकर वह उस कर्मसे मेरी प्रीतिके सिवा दूसरा कोई फल नहीं चाहेगा।

जीव मेरा अंश है—**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।** अंश अंशीसे अलग रहकर अशान्त रहता है; अंशीसे मिलकर ही उसे परम शान्ति परमानन्दकी प्राप्ति होती है। जैसे सरिताओंका नीर गम्भीर महासागरसे मिले बिना स्थिर नहीं होता, उसी प्रकार जीव मुझ परमात्मासे मिले बिना निर्वाणपरमा शान्तिको नहीं पाता; क्योंकि वह शान्ति 'मत्संस्था' है—मुझमें ही रहनेवाली है। यह लोक, यह शरीर अनित्य है, असुख है, किन्तु जीव नित्य है, सुखस्वरूप है। नित्य और सुख अनादि वासना या मोहवश अनित्य और असुखके घेरेमें आ गया है; यहाँ वह अपने आपको भूलकर उपाधिगत दुःखोंसे ही दुखी रहता है, अपनेको 'जरामरणभीत' अनुभव करता है। इस संकटसे छूटनेका एकमात्र अमोघ उपाय है—मेरा अनुस्मरण। इससे उसकी स्वरूपविस्मृति दूर होगी; वह समझेगा कि 'मैं उस अंशीका अंश हूँ, उस आनन्दसुधासिन्धुकी तरंग हूँ जो नित्य, अज, अनादिनिधन, विभु तथा सच्चिदानन्दघन है।' यह विश्वास दृढ़ होते ही वह उन उपाधियोंको, जो उसे दूर या अलग रख रही हैं, तोड़-फोड़कर मुझसे आ मिलेगा, एक हो जायगा। महासागरमें मिट्टीका घड़ा रक्खा है; उसके भीतर सागरका ही जल है। उसके बाहर भी अनन्त अपार महासागर ही लहराता है, किन्तु उस घट रूपी उपाधिने भीतरके जलको सागरसे पृथक् कर रक्खा है; उसके फूटते ही दोनों जल एक हो जाते हैं। सरिता सिन्धुमें मिलकर एक हो जाती है। जीव मुझसे मिलकर मेरे साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यह सम्बन्ध पहलेसे ही है; केवल पार्थक्य-भ्रम मिट जाता है। यह है अनुस्मरणकी महिमा।

मेरे स्मरणपूर्वक युद्ध करनेवाला कभी कायर नहीं हो सकता। वह समझेगा कि 'मैं अजर-अमर हूँ, प्रभुकी गोदमें समोद बैठा हूँ, मुझे कोई शक्ति उनसे अलग नहीं कर सकती।' फिर यह शरीर प्रारब्धवश रहे या जाय क्या चिन्ता? इस भावनासे उसका मनोबल ऊँचा होगा और सहस्रों शत्रुओंके बीच आग बनकर—वज्र बनकर टूट पड़ेगा। विजयश्री उसके चरण चूमेगी, उसे वरमाला पहनायेगी; इसलिए जीवमात्रको मेरा यह संदेश है—**'मामनुस्मर युद्धय च।'**

●

सम्पादकीय

नूतन वर्षमें प्रवेश

★

इस अंकके साथ श्रीकृष्ण-सन्देश अपने छठे वर्षमें प्रवेश कर रहा है। इसके साथ अतीतकी मधुर स्मृति जुड़ी हुई है, मंगलमय भविष्यकी आशामयी अंशुमालाओंसे प्रत्येक आशा-दिशा आलोकित है तथा वर्तमान अपने नव्य-भव्य स्वरूपकी परिकल्पनाके साथ सामने प्रस्तुत है। हम हर्ष और उत्साहके साथ इसका स्वागत करते हैं; साथ ही अपने ग्राहकों, अनुग्राहकों, पाठकों और पाठिकाओंको उनके भव्य भविष्यके लिए शुभाशंसा करते हुए विपुल बधाई देते हैं, जिनके सराहनीय सहयोगसे श्रीकृष्ण-सन्देश उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर स्थितिमें पहुँचता जा रहा है।

नये वर्षका नया सन्देश

श्रीकृष्ण-सन्देश देशके मनीषियों तथा नवयुवकोंको श्रीकृष्णके पथपर चलनेका सन्देश दे रहा है। श्रीकृष्ण क्या हैं, यह समझ लेनेकी आवश्यकता है। श्रीकृष्ण वह सर्वोत्कृष्ट वेद-वेद्य तत्त्व हैं, जिसे महामनीषी विद्वान् तथा ऋषि मुनि सर्वेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामोंसे जानते-मानते हैं। श्रीकृष्ण सर्वत्र व्यापक तथा सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। श्रीकृष्णसे भिन्न कोई तत्त्व नहीं। कोई वस्तु नहीं, अस्ति-नास्ति सब कुछ श्रीकृष्ण ही हैं। 'वासुदेवः सर्वम्', 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि आगम-निगमके उद्घोष श्रीकृष्णको ही लक्ष्य करके प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण 'महतो महीमान्' होकर भी 'अणोरणीयान्' बननेमें कोई संकोच नहीं करते हैं, वे सर्वलोक महेश्वर होकर सबके सुहृद हैं, सखा हैं। 'द्वा सुपर्णा सयुजा' इस श्रुतिने इसी सनातन सख्यकी ओर संकेत किया है। हम श्रीकृष्णके सखा हैं और श्रीकृष्ण हमारे। जगत्के लोग थोड़ा-सा भी अधिकार या वैभव पाकर अपनेको जन-साधारणसे पृथक् और महान् समझने लगते हैं। दूसरोंको सखा कौन कहे, दासके समान भी नहीं समझते हैं। परंतु लोकमहेश्वर श्रीकृष्ण हमें अपना सखा कहते और मानते हैं। वे क्या चाहते हैं, क्या करते हैं? साधुपरित्राण, दुष्टदमन तथा धर्म संस्थापन। वे गोपाल बनकर हमें गोपालनका भी सन्देश देते हैं। आइये, हम सब उनके आदेशके पालनके लिए प्राणपणसे जुट जायँ। यदि हम श्रीकृष्णके झंडेके नीचे संगठित होकर ऐसा कर सकें तो हम श्रीकृष्णके प्रीतिभाजन तो होंगे ही, अपने देश और समाजको भी बड़े भारी संकटसे बचा लेंगे। अपने राष्ट्रकी एक अहम् समस्याको सुलझानेमें समर्थ हो सकेंगे।

आज देशमें अपराधोंकी संख्या बढ़ रही है, किसीका भी धन, जन और जीवन सुरक्षित नहीं है। लूटपाट, हत्या, नारी-अपहरण तथा बलात्कारकी घटनाएँ दिनोंदिन बढ़ रही हैं। यह सब शासनके लिए एक भारी चुनौती है। दुर्दान्त दानवी शक्तियोंने सारे देशमें अराजकता-सी मचा रक्खी है। शासन पङ्गु-सा हो गया है तथा आरक्षा-विभाग अकर्मण्य—असफल सिद्ध हो चुका है। ऐसे समयमें श्रीकृष्णके सखा गाँव-गाँवमें संगठित हों और अपराध-परायण आसुरी शक्तियोंको दबानेके लिए स्वयं खड्गहस्त हो जायँ। श्रीकृष्णके सखाओंने उनके नेतृत्वमें संगठित होकर द्वापर युगमें व्रजमण्डलके समस्त असुरोंका संहार कर डाला था। क्या हम अपने-अपने गाँवको भी नहीं बचा सकते? **'नौ पथिक नचावत तीन चोर'** की तरह मुट्ठी भर अपराधी सारे देशको आतङ्कित कर रहे हैं। क्या यह घोर लज्जाकी बात नहीं है। शासन और आरक्षा-विभागका भी कर्तव्य है कि गाँव-गाँवमें देशभक्त श्रीकृष्णसखाओंके संगठनको सुदृढ़ बनावें। यदि देशके युवक जाग्रत होकर अपनी और अपने राष्ट्रकी रक्षाके लिए कमर कसकर खड़े हो जायें तो दानवी शक्ति दुम दबाकर भाग खड़ी होगी। सर्वत्र सुख-शान्तिका साम्राज्य छा जायगा। जब जानता शासनका निर्माण कर सकती है, उसे बदल सकती है तो क्या वह संगठित होकर स्वयं देशकी रक्षा नहीं कर सकती है? निःसन्देह श्रीकृष्णके ये सखा संघटित होकर धर्म और सदाचारका संस्थापन कर सकते हैं। दुष्ट दस्युओंके दमनमें सक्षम हो सकते हैं तथा गौओंकी, निरीह जनताकी और साधु पुरुषोंकी रक्षामें शत-प्रतिशत सफल हो सकते हैं। वे क्यों दूसरेका मुँह जोहें? क्यों शासन या पुलिसको कोसें? स्वयं सब कुछ कर सकते हैं, अपनी इस अजेय शक्तिका वे अनुभव करें और श्रीकृष्णका आश्रय लेकर **'करिष्ये वचनं तव'** के स्वरमें कर्त्तव्य पालनके लिए हामी भरकर आसुरी शक्तियोंसे लोहा लेनेको तैयार हो जायँ। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं; जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है **'यतः कृष्णस्ततो जयः।'**

●

ठोंक-बजा लेता हूँ

एक गाँवमें भागवतकी कथा कहने गया था। थोड़ा दिन रहते घूमनेकी इच्छासे गाँवके पटेलके बगीचेमें गया। वहाँ राज कुँआ बना रहा था। उसकी आदत थी कि वह ईंटको रखकर उलटी-सीधी करनीसे उसे ठोंकता था। उसका यह ठोंकना निरर्थक समझकर मैंने पूछा—'हर ईंटको क्यों ठोंका करते हो।'

'पण्डितजी! आप क्यों मेरी हँसी उड़ाते हैं। जिस तरह आपकी श्रीमद्भागवतका हर श्लोक, हर मन्त्र ठोंका हुआ है, बजाया हुआ है उसी तरह इसमें लगनेवाली हर ईंटको ठोंक-बजा लेता हूँ।'

—रामचन्द्र दवे
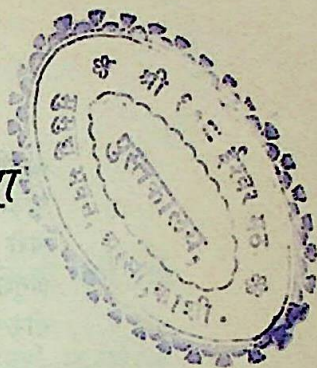
स्वागत हे घनश्याम तुम्हारा

☆

तुम आओ रससे आप्लावित नील धरित्रीका हो अञ्चल।
उत्कण्ठित उल्लसित हो उठें कालिन्दीकी लहरें चञ्चल॥
बन्दी गृह मन्दिर बन जाये मिले श्यामकी झिलमिल झाँकी।
घर-घरके वसुदेव-देवकीके स्नेहामृत झरें दृगञ्चल॥
जन-जनकी रसनापर जै-जैकार युक्त हो नाम तुम्हारा।

एक-एक कर लाख-लाख बाधाओंकी कड़ियाँ कट जायें॥
पैरोंकी बेड़ी टूटे, हाथोंको हथकड़ियाँ कट जायें।
मुक्ति लोटती हो आँगनमें लोह अर्गलाएँ हट जायें॥
और विश्वमें विस्मयकारी एक अघट घटना घट जाये।
गिरो गोदमें मोद-निमज्जित हो गोकुल अभिराम तुम्हारा॥

युग-युगसे हैं बाट जोहती वे गैयाँ गोपाल! तुम्हारी।
तुम-सा कौन पुकारे उनको कहकर धूमर धौरी कारी॥
अरे! लाखसे लीख हो गयीं, अब भी दौड़ो उन्हें उबारो।
मार रहे उनकी ग्रीवापर कोटिक कंस नृशंस कटारी॥
आवाहन कर रहा मनसुखा प्रतिदिन आठो याम तुम्हारा।

खाली मटके धरे गेहमें लटक रहे हैं सूने छींके॥
कहाँ चुराओगे माखन अब दर्शन नहीं दहीके घीके।
विरहानलसे दग्ध तुम्हारे कालिन्दी भी सूखी जाती॥
कहाँ मिलेंगे जल विहारके अवसर तुम्हें कन्हैया! नीके।
गोवर्धन धँस रहा धरामें नीरव नन्दग्राम तुम्हारा॥

पदपंकजका स्पर्श प्राप्तकर रोमांचित धरती हो जाये।
वनमाली वनकी उपवनकी फिर डाली डाली खिल जाये॥
कुंज-कुंज सज उठे रासकी रंगीनी छा जाये फिरसे।
स्नेह प्रीति संगीत सुधामें पुनः सभी सुध-बुध बिसराएँ॥
झूम उठे वंशीके लयपर फिर वृंदावन-धाम तुम्हारा।

संघ शक्तिमें जोड़ जगाओ फिर जाटों-ग्वालोंकी टोली॥
जिसे देख दानव-असुरोंका भयसे तुरत बन्द हो बोली।
कुवलयपीड कई जीवित हैं, फिरसे उनके दाँत उखाड़ो॥
एक नहीं अगणित कंसोंकी होगी तुम्हें जलानी होली।
मस्तक ऊँचा करो समूचा भारत ही हो ठाम तुम्हारा॥

कलुषित कुटिल कालशकुनीने फिर जूएका जाल बिछाया।
पांडव सम ऋतु पाँच पराजित राज्य ग्रीष्म-कुरुपतिने पाया॥
भरी सभामें द्रुपद-सुता-सी वसुधाकी है लाज लुट रही।
अनुशासन पा दुष्ट दुशासन सदृश भानुने कर फैलाया॥
नीर-चीरकी हो वर्षा अब शीघ्र यहाँ—यह काम तुम्हारा।

—'राम'

(निगमामृत)

(श्वेताश्वतर-उपनिषद् ६।११,१२)

१

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

सब भूतोंमें छिपे हुए वे एक देव हैं परमात्मा,
सबमें व्यापक, सब जीवोंके वे अन्तर्यामी आत्मा।
कर्मोंके अधिपति फल दाता, सबके ही आश्रय आवास,
साक्षी हैं, केवल, निर्गुण हैं चेतन हैं—चैतन्य-प्रकाश॥

२

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

जो अनेक निष्क्रिय जीवोंके शासक और नियन्ता एक,
एक मात्र इस प्रकृति-बीजको देते हैं, जो रूप अनेक।
उन प्रभुको निज हृदयस्थित जो सदा देखते धीर प्रवीन,
उन्हें सनातन सुख मिलता है, नहीं उन्हें जो साधन हीन॥

जीवन, मृत्यु, मोह, निःसंगता, भक्ति और मोक्षके मूल्याङ्कनकी नयी दृष्टि

जीवन-दर्शन

श्री गोविन्द शास्त्री

कहनेको कोई भी कह सकता है—'मुझे जीवनसे कोई मोह नहीं' आस्तिक इस जीवनको अपने भगवान्‌की निधि समझकर उसीके प्रत्यर्पित करनेको उद्यत रहता है, नास्तिक इसे अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लेता है; किन्तु जिस क्षण जीवनका सूत्र टूटनेको होता है तो व्यक्तिका भयविजडित चेहरा विवश क्रन्दनका मूर्त रूप हो उठता है। उसके अवरुद्ध कण्ठमें अप्रिय प्रयाणका भय और मुक्त जीवनका मोह घरघराने लगता है। व्यक्ति इस महाप्रयाणको अनिवार्य प्रकृति मानकर भी, परमेश्वरकी निक्षिप्त निधि समझकर भी मनसा तैयार नहीं होता। जीवनके कण्टकित पथपर पदे-पदे शूलविद्ध रहकर भी, मर्मवेधी पीड़ासे पीड़ित होकर भी जीवनसे चिपटा रहना चाहता है। सुखानुभवके स्रोत और साधनोंके समाप्त हो जानेपर भी ऐसा कौन-सा विश्वास है जो उसे जीवनके प्रति व्यामोहग्रस्त बना देता है? शरीरकी सामर्थ्यके चुक जानेपर भी ऐसा कौन-सा आधार है जो जीवनके प्रति आशावान् बनाये रखता है? ये प्रश्नचिह्न जीवनके अन्तिम शिविरपर आते ही हैं, आस्तिक और नास्तिक दोनों इस स्थलपर आकर विमुग्ध हो जाते हैं।

जो जीवनके प्रति निर्लिप्त भाव रखते हैं (दिखाते हैं) उन्होंने अपने मोह-महीरुहके मूलको कभी नापा ही नहीं; अन्यथा वे निश्चित रूपसे जान लेते कि जिस निस्संगताको वे वचनमें व्यक्त करते हैं वह यथार्थ नहीं है। निस्संगताको जीवनीय बनानेके लिए, मोहका उच्छेद करनेके लिए भी जीवको जीवन चाहिए। यह मोह उतना गर्हित नहीं है जितना कहा जाता है। यह संसारका लक्षण है, अनिवार्यता है, प्राकृतिकता है। इससे बचकर कोई कहाँ जाय? जहाँ जीवन है—वहाँ मृत्यु है, जहाँ जीवन है—वहाँ मोह है। मरणका त्रास हमपर इसलिए प्रभावी हो जाता है कि उस अपरिचित यात्रासे हम कुछ परिचित हैं, कुछ अपरिचित हैं। जीवनके कर्मोंका क्या मूल्यांकन किया जायगा? जीवनकी विवशताओंने हमसे कौन-कौन-से अपकर्म कराये और उनका कितना कष्टकर परिणाम हमको भोगना पड़ेगा? यह आशंका हमारे इस प्रयाणको आतंकित कर देती है, हम इस अनिवार्यताको सहज होकर नहीं स्वीकारते। इस जीवनके प्रसंगमें स्वाभाविक रूपसे घटी घटनाएँ इस जीवनके अतीतको और अधिक आकर्षक बना देती हैं और व्यक्ति उनसे प्रतिबद्ध हो जाता है। अतीतकी आत्मीयता

और मरणान्तिक अपरिचय अधिक उग्र हो जाता है। व्याधिग्रस्त, जरा-जर्जर और विडम्बित जीवनसे समझौता करके जीनेको अज्ञात भविष्यत्की अपेक्षा प्रियतर समझता है। इसीलिए जीवनको पकड़े रहना चाहता है, इसीलिए मृत्युसे घृणा करता है।

जीवनके प्रति दिखायी जानेवाली निस्संगताको वे लोग विराग कहते हैं जबकि इस स्थितिमें विरागकी कोई स्थिति नहीं होती। यह कल्पित विराग स्वीकारात्मक विकल्प होता है। रागको भुलानेके लिए विरागकी सत्ता मानी जाती है। सांसारिक कटुताओंको भूलनेके लिए व्यक्ति विरागको अपनाता है, भगवान्की कल्पना करता है। वस्तुतः राग और विरागमें कोई अन्तर नहीं होता। राग प्रवृत्ति है तो विराग उस प्रवृत्तिका क्षितिज है। यह भी कहा जा सकता है कि राग और द्वेषके सन्धिस्थलको विराग माना जाता है अथवा संगके द्वेष रूपमें परावर्तित होनेके मध्यविन्दुको विराग कहा जाता है तो भी अयुक्त नहीं होगा। इस विरागमें राग जैसी आकर्षणकी प्रबलता नहीं तो द्वेष-जैसी विकर्षणकी विमुखता नहीं। इसी विरागका स्थानापन्न भक्ति है जिसमें भक्त अपने भगवान्को सर्वस्व समर्पण करनेका वचन लेता है। यथार्थरूपमें यह भी निर्बलता ही है। सांसारिक दुर्धर्षताके सामने अपने आपको हीन समझनेवाला भक्त अपनी हीनताको अपने इष्टको समर्पित करके सन्तोष ले लेता है। व्यक्तिको स्वयंकी निर्बलता भूलनेके लिए कोई युक्ति चाहिए अपनी विफलताओंका उत्तरदायित्व थोपनेके लिए कोई माध्यम चाहिए और वह माध्यम भाग्य अथवा भगवान्के नामपर उसे मिल ही जाता है। विरले अपवादोंको छोड़कर अधिकांश भक्तोंकी भक्ति ऐसी ही विनिमय होती है। भगवान् व्यक्तिकी पलायनवादी मनोवृत्तिके लिए शरणस्थल बनकर आते हैं, दीनके लिए अनन्य आश्रय होते हैं तो यह भगवान्का अपमान करनेका षड्यन्त्र है। भक्तिमें स्वत्वको स्थान नहीं है, अपनी स्वतन्त्र सत्ता और अहम्को भक्ति नहीं मानती पर वह व्यक्तिके विश्वासके लिए अभिचार कर्म नहीं बनती, व्यक्तिके अस्तित्वको नष्ट नहीं करती। परम भक्त अर्जुनकी उक्ति—

'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं न पलायनम्।'

भक्तके आत्मविश्वास और स्थिरताकी घोषणा करती है, पलायनवादी और दैन्यदायिनी भक्ति व्यक्तिकी आत्मप्रवञ्चना है। ऐसा कल्पित आत्मतोष भक्तिका साध्य नहीं है। इस आत्मतोषसे व्यक्तिकी कर्मशक्ति रुद्ध होती है और यह निष्फल भक्ति, निरात्म आराधना भक्तको और देशको निष्प्राण कर देती है। इस कल्पित आत्मतोषके सुखाभाससे श्रेष्ठतर है असफल किन्तु सटीक पुरुषार्थकी क्रान्ति। भक्तिमें भी प्राणोंकी आवश्यकता होती है और महाप्राण भक्तिके आगे भगवान्को समर्पित होना ही पड़ता है। जिस किसी भी भक्तने भगवान्को पाया है, पुरुषार्थसे पाया है। सच तो यह है कि विनीत पुरुषार्थ, अनन्य कर्म ही भक्तिका वास्तविक प्रतीक हैं और उसको न विनाश भयभीत करता है न जीवनका रस मोहसिक्त कर पाता है।

मृत्युकी विभीषिकासे त्रस्त अथवा जीवनके स्वत्वसे मुग्ध व्यक्तियोंने मोक्षका प्रलोभन देकर भगवान्के अस्तित्वको चुनौती दी है। चुनौती इसलिए कि वे अपने आपको उस अनन्त

सत्ताके समान समझनेका विश्वास जुटाते हैं तथा अपने आपको तद्रूप बनानेका निश्चय करते हैं किन्तु उनकी मुक्ति भी किसी अकर्मण्यताका ही प्रतिरूप है। कोई भी व्यक्ति प्रयत्नवान् बने, कर्मनिष्ठ बने किन्तु आत्यन्तिक विश्राम पानेके लिए ऐसा करता है तो यह उसकी फल-केन्द्रितता, परिणामपरायणता है। उसका कर्म फलके हाथ बिक जाता है। साधनाकी गरिमामें वह अपने आपको आत्मसात् नहीं करता, द्वित्व रहता ही है। फिर व्यक्ति अखण्ड विश्रामके लिए, कर्मसे पलायन करनेके लिए कई जीवनोंकी आहुति देकर एक टुच्ची-सी चीज पाना चाहता है तो यह मरीचिका है, वितृष्णा है। मोक्ष ही सारवत् और संसारका साध्य होती तो मोक्षके अधिष्ठाताको प्रत्येक युगमें क्यों आना पड़ता? कर्मको फलासक्तिसे बाँधना होता तो गीताका प्रणयन क्यों करता?

प्रयत्नोंसे यदि मुक्ति स्वयं मिलती है, साधनासे साध्य स्वयं प्रकट होता है तो वह अर्थवान् है किन्तु मुक्तिके लिए प्रयत्न अथवा सिद्धिके लिए साधना एक सापेक्षता है उसमें निरपेक्षता, निस्संगता आहार्य रूपसे आती है सहज रूपसे नहीं। ये प्रयत्न ठीक ऐसे ही हैं जैसे कोई विद्यार्थी छुट्टी पानेके लिए पढ़ रहा है। उस अध्येताका लक्ष्य छुट्टी है, अध्ययन सापेक्षवस्तु है। ऐसी साधना भयग्रस्त अथवा लोभोपहत है और इसने व्यक्तिको निष्कामके स्थानपर निष्कर्म बनाया है। साधनाकी प्रतिष्ठा सिद्धिसे एक रूप होनेके लिए की जानी चाहिए भिन्न होनेके लिए नहीं। सिद्धिके लिए साधनाका विक्रय न शास्त्रसङ्गत है, न न्याय-सिद्ध। गीताके निष्काम कर्मयोगका यही साध्य है, यही स्वरूप है। वस्तुतः यदि साधनामें सिद्धिका आग्रह नहीं है तो वह स्वयं मूर्तिमती मुक्ति है। अर्जुन जिस सोद्देश्य युद्धसे विरत हो जाना चाहता था उस युद्धको केवल कर्मभावनासे करनेका आग्रह ही गीता है। उन्होंने अर्जुनसे कहा—सव्यसाची! तू तो निमित्तमात्र है, इस निमित्त भावनाका लक्ष्य था कि अर्जुन फलासक्तिके विषसे प्रभावित नहीं हो। आज मुक्तिका अस्तित्व मरणभयपर टिका हुआ है, मुक्तिके लक्ष्य-विन्दुके इतस्ततः ही सारे धार्मिक अनुष्ठान चंक्रमित हैं। भगवद्रूप होनेके लिए भक्ति-आतुर एक मोहसे दूसरे मोहको धोनेका प्रयोग किया जा रहा है, एक भयको लोभके आवरणसे ढांका जा रहा है।

कोई भी वस्तु अपने पारमार्थिक रूपमें निर्विकल्प है, अपने आपमें निस्संग है। दृष्टिकोण और व्यक्तिकी सीमाएँ अर्थ और स्वार्थ उसको नापते-परखते हैं और उसमें गुण-दोषोंका आरोप कर बैठते हैं। कोई भी वस्तु न नितान्ततः गुणवत् है न सर्वांशतः दोषयुक्त ही, वह तो बस जो है वही है किन्तु वह भी सदोष-निर्दोष या हेय-ग्राह्य बन जाती है। इसका कारण है कि व्यक्ति उस निरपेक्षताको अपने आयामसे तौलता है और उसमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका आरोप कर लेता है। जहाँ यह द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है वहींसे विविधताका प्रारम्भ होता है। एक ही सत्ताके विविध रूप बन जाते हैं, एक निरपेक्षताको सापेक्षिकता नाना रूपोंमें बांट देती है। अनेकता एकसे सृष्ट है इसलिए सारी अनेकता मिलकर सम्पूर्णता होती है। यह अनेककी सम्पूर्णता—'**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्**।' में ध्वनित होती है। पृथिवी अनेक रूपोंमें है, जलके

असंख्य स्वरूप हैं किन्तु इस नानारूपतामें भी वह तत्त्व तो है ही। इस अनेकतामें एकत्वको खोजनेके लिए भारतीय दर्शनशास्त्र चिन्तनकी अतल गहराईको थाह आया है। इसलिए उसने पृथ्वीके अनेक रूपोंकी व्याख्या न करके उसे गन्धवती बता दिया। गन्धवत्ता पृथिवी हैं तो वह अनेकतामें भी ज्ञेय है, उसकी सत्ता कहीं भी व्याहत नहीं होती। गीताके कृष्ण इस सारे विलासको, अनेकको थाम रहे ऐक्यको और भी स्पष्ट रूपसे समझा देते हैं। वे होता, भोक्ता और हविष्यको भिन्न नहीं मानते। उनकी इस अव्याहत व्यापकतामें कहीं भी विसंगति नहीं है, कोई भी संशय नहीं है।

यह विश्वरूपता व्यक्तिके आचरणमें आ जानेपर वह स्वयं मोक्षरूप हो जाता है। वेदान्तका 'सोऽहम्' महावाक्य समग्र चराचरको अपने आपमें समेट लेनेकी अथवा विश्वकी विभुतामें स्वयंको समर्पित कर देनेकी यथार्थ अनुभूति है। इस महावाक्यका आत्म-दर्शन करनेके लिए व्यक्तिको दृश्य वस्तुके, जंगम जगत्के अन्तस्तलको देखना होगा। जो बाहर है, उसे भीतर पाना होगा और जो भीतर है उसे बाहर पहचानना होगा। इस दर्शनके बाद जीवन-मरण सामान्य प्रकृति बन जायेंगे, उनको आसक्त होकर देखना उसके लिए अस्वाभाविक हो जायगा।

भक्ति, आस्तिकता और मोक्ष कोई आलोचनाके विषय नहीं हैं, इनमें अग्राह्य तत्त्व कोई नहीं है। अग्राह्यता यदि कहीं है तो तर्कके पूर्वाग्रहमें, विडम्बित जीवन-दर्शनमें। आस्तिकताका महत्त्व उसकी तर्क-सिद्धताके कारण नहीं होता; क्योंकि तर्क अपने आपमें भ्रान्ति है यदि उसका उपजीव्य विवेक और विश्वास नहीं है। निरा तर्क भ्रान्तियोंका पंकिल प्रसार है जिसमें गिलन है, फिसलन है। आस्तिकता जागतिक बन्धनोंको, सांसारिक व्यामोहोंको भूलनेका विधेयात्मक मार्ग हो तो भी कोई आपत्ति या विरोधाभास नहीं है। विरोध उस स्थितिसे है जहाँ स्मरणको विस्मरणका मुखौटा पहना दिया जाता है। किसी वस्तुको भूलनेके लिए याद रखना—एक प्रवंचन है। मरण भयको याद रखनेके लिए भक्तिका भुलावा और सांसारिक संत्रासोंको झुठलानेके लिए मुक्तिका छल, स्पृहणीय और श्रेयस्कर नहीं हो सकते। इसलिए विराग रागका स्थानापन्न है तो धोखा है। जीवनको मोहका व्यक्तीकृत रूप माननेका आशय यह था कि इस मोहके कारण मरण अप्रिय और भयप्रद लगता था।

जीवनके लिए जगत्के आकर्षण आवश्यक हैं, सार्थक हैं, प्रवाहके लिए घुमाव जरूरी है, धरतीका निम्नस्तर भी अनिवार्य है। ये सब गतिके प्राण हैं, प्रवाहके प्रेरक हैं। मोह किंवा वासना संसारके दुर्जेय आकर्षण हैं। इनसे संसारकी सरणशीलता अक्षत रहती है किन्तु ये स्वयं प्रवाह, प्रगति नहीं हो सकते। जलके क्षणभंगुर बुद्बुदोंकी परम्पराके समान ये अनवरत उत्पन्न-विनष्ट होते रहते हैं। यही स्थिति कामना-वासनाकी है, प्रवाहमें पड़ रहे भ्रमरकी तरह होता है। मोह जिसमें गति है पर दिशा नहीं। सकाम प्रयत्न, सिद्धिमुखी साधना भी भ्रमर है जिसमें गति है पर दिशा नहीं।

जीवनके साथ मोह है जो परम्पराके रूपमें व्यक्तिको मिलता है। मोहके ही कारण जीवन-मरण एक सत्ताके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं। जीवनका अस्तित्व जब अस्थिर हो

उठता है तो मोहाविष्ट व्यक्तिको बुद्धि जीवनको अधिकारसे बाँध लेना चाहती है और इस अधिकारके साथ मरणबोध दुःखदायी लगने लगता है।

व्यक्तिने जीवनमें जिसे धर्मके रूपमें पूजा था वे परम्पराद्वारा दिये गये कुछ संस्कार थे। उन आस्थाओंने धर्मको, भगवान्‌को सहस्रधा करके व्यक्तिको विखण्डित कर दिया था। भगवान्‌के नाम ही नहीं, रूप और स्थानभेद भी ऐसे ही संस्कारोंका फल था। ऐसी ही भ्रान्तियाँ जीवनके महाप्रयाणको शोकदग्ध कर जाती हैं। धर्मकी निष्क्रिय अवस्थामें ही भेद पनपा करता है। धारण करनेपर सभी धर्म गंगाकी तरह पावन हो जाते हैं, उसके तपःपूत रूपमें कोई भी अमेध्य नहीं रहता, कोई वर्ग-विभेद नहीं रहता।

जिस विखण्डनका आज अनुभव किया जा रहा है अथवा जिन कुण्ठाओंको आजका युग भोग रहा है वे सब इसलिए हैं कि आदर्श और क्रियामें अलंघ्य अन्तर पड़ गया है। धर्म मान्यताके रूपमें शेष रह गया है, भगवान् तर्कके आधारपर टिक गया है और विश्वास आलोचनाका विषय बन गया है। परिणाम यह है कि हमारे पल्ले तर्कका निष्प्राण शव पड़ गया है और हम उसे मर्दनके बलपर जीवित करनेकी चेष्टामें लगे हुए हैं। इन विभ्रमोंसे जीवनकी-क्षण भंगुरताको प्रकृति माननेके स्थानपर अधिकार समझ रहे हैं और यह अधिकार अन्ततः ग्लानिका ही सिद्ध होता है।

आजका जीवन उन्मादग्रस्त जीवन है। उन्माद चाहे विसर्गका हो अथवा संग्रहका, वह यथार्थसे दूर ही रखता है व्यक्तिको। ऐन्द्रिय उपलब्धियाँ संग्रह-विसर्ग तक सीमित हैं। संग्रह-विसर्गमूलक कर्म द्वन्द्वमें उलझा देते हैं, तटस्थता अथवा निस्संगतामें नहीं रमा सकते। व्यक्तिके सुखोंकी परिभाषा और सीमा इन्द्रियोंकी उपलब्धि तक सीमित होनेका अर्थ होता है संसार, मोह और फलासक्ति। मन इन इन्द्रियोंका मूर्धा है, उसमें संग्रह-विसर्ग दोनोंके बोधकी योग्यता है। इसलिए वह शक्तिशाली नहीं माना जाता बल्कि उसकी उच्चता इसलिए है कि वह इन द्वन्द्वोंका अनुभविता होकर भी इनसे निरपेक्ष हो सकता है, यदि परम्परा-प्रदत्त अभ्यास और वातावरणकी अनिवार्यताका बन्धन शिथिल करनेका अभ्यास एवं प्रेरणा उसे दी जाय। नारी राजसी सृष्टि है। रजोगुणकी प्रतीक नारीमें सृजनकी नमस्य गरिमा है किन्तु रजोगुण सुख या सुखाभास ही दे सकता है आनन्द नहीं। गुणोंकी सीमामें रह रहा व्यक्ति निस्संगताका अनुभव नहीं कर सकता। जहाँ सुखका अनुभव है वहाँ दुःखका भी स्थान है। व्यक्ति जबतक संस्पर्शजनित उपभोगोंके जंजालमें फँसा हुआ है तबतक उसमें द्वन्द्वातीत होनेकी, मोहका दुर्भेद्य प्राचीर तोड़ सकनेकी अपनी क्षमतासे परिचय नहीं हो सकता और जबतक वह आत्मविस्मृत है, उसे जीवनके प्रति मोह रहेगा, मरणसे भय लगता रहेगा। मरणको उत्सव समझनेके लिए जीवनको निक्षिप्त निधि समझना पड़ेगा।

●

श्रीकृष्णका पुरुषोत्तमयोग

(१)

जहां जोव नित रहे जीवको लोक कहावै।
जहँ नित सोवै पुरुष देह तन जो कहलावै॥
वाको स्वामी जीव अंश मम नित्य सनातन।
वही प्रकृति में पैठि करै मन इन्द्रिनि करषन॥
दश इन्द्रिय अरु ग्यारवों, मन ये सबई जड़ कहे।
इनहि घुमावत जीव नित, वही हमारो अंश है॥

(२)

जब तजि एक सरीर जीव अन्यनिमें जावै।
तब अपने ई संग इन्द्रियनि मन लै जावै॥
करमनिके अनुसार तहाँ भोगनि कूँ भोगत।
देह-पुरीमें सयन करै सो पुरुष कहावत॥
वायु गंध थल जब तजहिं, गंध संग ले जात है।
तैसे देही तनु तजै, करन हु संग लगात हैं॥

(३)

सब बिषयनि कूँ जीव स्वयं ई भोगत नाहीं।
आश्रय करननि करै करै उपयोग सदा ही॥
जैसे सुननो चहे श्रोत्र तैं वह सुनि लेगो।
देखन चाहै बस्तु चक्षु तैं वह लखि लेगो॥
रस चखिबो चाहे जबहिं, रसना तैं रस लेइगो।
परस सूँघिबो जब चहै, त्वचा नाक तैं लेइगो॥

—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

तुलसी-जयन्तीके उपलक्ष्यमें

तुलसीके 'राम'

श्रीबलराम शास्त्री

गोस्वामी तुलसीदासजीने 'राम'की जो व्याख्या उपस्थित की है, वह सत्यं शिवं सुन्दरम् की बोधगम्य परिभाषा ही है। सन्त कविने नामके महत्त्वको रामके महत्त्वसे अधिक माना है। नामकी गुणगरिमाका वर्णन 'राम' भी नहीं कर सकते। रामने अपने भक्तोंके लिए अवतार ग्रहण किया और उनको सुख पहुँचाया। 'नाम' तो कल्याण और आनन्दका आवास ही है। रामने एक अहल्याका उद्धार किया और नामने तो करोड़ों कुबुद्धियोंको बुद्धि—दान दिया। रामने ऋषि विश्वामित्रके लिए युद्ध ठाना, ताड़का तथा सुबाहुका बध किया और उनको सेनाका संहार किया। और 'नाम'के प्रभावसे अनेकों भक्तोंके दुःख और दुराशाका नाश हो जाता है। रामने शिवका धनुप तोड़ा किन्तु नामके प्रभावसे भक्तोंका भय सर्वदाके लिए दूर हो जाता है। रामने दण्डक बनको सुहावना बनाया, नामके प्रभावसे घोर कलिकालकी कलुषित पापाचारिता अपने आप समाप्त हो जाती है। रामने सबरी, जटायु, गीध आदि कतिपय सेवकोंका उद्धार किया और नामने असंख्यों पातकी जनोंको भवसागरमें डुबनेसे बचया। रामने बिभीषण और सुग्रीव दो ही शरणागतोंपर कृपा दिखायी। किन्तु नामने असंख्य दीनोंका उद्धार किया। नामकी महिमा वेद और लोकमें विख्यात है। रामने बंदरों और भालुओंकी सेना बटोरी। और समुद्रपर पुल बँधाया किन्तु नामके उच्चारणमात्रसे ही 'भवसागर' सूख जाता है। रामने कुटुम्बसहित रावणको मारा और बादमें वह राजा बने। परन्तु नामका स्मरण करनेवाले जन 'नाम'का स्मरण करके बिना प्रयास मोहको प्रबल सेनाको जीतकर आनन्द—ब्रह्मानन्दमें लीन हो जाते हैं। स्वप्नमें उन्हें चिन्ता नहीं सताती। इस प्रकार नाम वरदायकोंको भी वर देनेवाला है। अतः भगवान् शंकर भी 'नाम'की उपासना करते हैं। नामके प्रभावसे भगवान् शंकर अविनाशी बन गये। वह अमंगल वेश धारण करनेपर भी 'मंगलविधायक' बन गये। नामके प्रभावको समझकर शुकदेव आदि ज्ञानीजनोंने 'ब्रह्मपद'को प्राप्त कर लिया। नामके प्रभावको नारदजीने समझा था। नामके प्रभावसे ही नारदजी 'शिव' और 'विष्णु'के प्रीति पात्र बन गये। नामके प्रभावसे प्रह्लाद भक्तराज बन गये। ध्रुवने 'अमर' पद प्राप्त किया। नामके प्रभावसे ही हनुमानने

रामको अपने वशमें कर लिया। नामके प्रभावसे अनेकों पापी तर गये। मैं तुलसीदास रामके 'नाम'की महिमा कहाँ तक वर्णन करूँ स्वयं राम भी 'नाम'का गुणगान नहीं कर सकते।

सन्तशिरोमणि तुलसीदासजीने इस प्रकार नाम-जपकी महिमाका वर्णन किया है। यहांपर एक प्रश्न उपस्थित होता है? 'क्या सन्त कविने अपने मनसे 'नाम'के प्रभावको व्यक्त किया है?' अथवा कविका कथन शास्त्रानुमोदित है? सन्त कविने मानसकी रचनाके पूर्व यह लिख दिया "नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि" मानसमें जो कुछ लिखा गया है, वह वेद, पुराण, श्रुतियों, और स्मृतियोंके आधारपर ही लिखा है। रामनामकी महत्ता और व्यापकता और उपासनाके ऊपर कुछ लिखना अभीष्ठ है। रामनामकी एक व्याख्या 'रामतापनी' उपनिषदमें लिखी है। 'राम' उस परब्रह्म परमात्माको कहते हैं, जो अनन्त, अनादि है। नित्यानन्द है। चिदात्मा है। योगी लोग जिसमें रमण करते हैं, वही 'राम' है।

रमन्ते योगिनो अनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

महारामायणमें लिखा है, रकार चिद्ज्ञानस्वरूप वाचक है। और आकार सद् वाचक कहा जाता है। तथा मकार आनन्दवाची है। 'राम' शब्द अविनाशी सच्चिदानन्दका बोधक है।

चिद्वाचको रकारः स्याद् सद्वाच्याकार उच्यते।
मकारानन्दवाची स्यात्, सच्चिदानन्दमव्ययम्॥

पुनः इसी ग्रन्थमें लिखा है, रकार परम वैराग्यका कारण है। और आकार ज्ञानका स्रोत है। मकार भक्तिका स्रोत है। इसे ज्ञानी पण्डितोंने स्वीकार किया है। रामनामका ही प्रभाव है कि गणेशजी देवोंमें सर्वप्रथम पूज्य माने गये। इस तत्त्वका उद्घाटन भी गणेश-पुराणमें ही हुआ है। गणेशजीने स्वयं कहा है, मैं रामनामके प्रभावसे ही लोकमें पूजनीय बन गया। एतदर्थ रामनामका उच्चारण सर्वदा करना चाहिए।

अहं पूज्योऽभवंलोके श्रीमन्नामानुकीर्तनाद्।
अतः श्रीरामनाम्नमस्तु कीर्तनं सर्वदोचितम्॥

सन्त तुलसीदासजीने इसी आधारपर कहा है,

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥

भगवान् शंकरजी रामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए अघाते नहीं। रामनामकी महत्ताके आधारपर ही वह हालाहल पी गये और उसे पचा लिया। भगवान् शंकरके उस लोक उद्धारक कार्यसे संसारका कल्याण हो गया।

शिवपुराणमें इस कथनका समर्थन मिलता है।

शृणुध्वं भो गणास्सर्वे, रामः नामपरं बलम्।
यत्प्रसादान्महादेवो हालाहल मपीपचत॥

सन्त तुलसीदासजीने भी इसका समर्थन किया है।

नाम प्रभाव जान सिव नीको। काल-कूट फल दीन्ह अमीको॥

वह रामनाम ऐसा तत्त्व है, जिसके अंश मात्रसे विष्णु, ब्रह्मा और शिव अवतरित होते हैं। वह रामनाम भजनके योग्य है। उसीका सहारा लेकर भवसागर पार किया जा सकता है।

ब्रह्माविष्णुमहेशाद्याः यस्यांशो लोकसाधकाः।
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे॥ (स्कन्धपुराण)

सन्त तुलसीदासजीने इसका समर्थन किया है।

सम्भु बिरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते जाना॥

ब्रह्मपुराणमें 'रामनाम'के समर्थनमें एक कथा है। एक बार एक म्लेच्छको एक जंगली सूअर अपने दाँतोंके चपेटमें मार डाला। उस म्लेच्छको वह जंगली सूअर जब अपने दाँतोंके चपेटमें आहत कर रहा था, उस समय वह चिल्लाया 'हाय राम' 'हाराम!' मैं मारा गया। और उस प्रकार चिल्ला, चिल्लाकर उसने अपने प्राण छोड़े। 'हाराम' शब्दमें 'ह' को हटानेपर केवल 'राम' ही रह जाता है और अन्तिम समयमें 'राम'के उच्चारणने ही उसको स्वर्ग पहुँचा दिया।

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छोऽपि नाकं गतः,
'हा' रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पन् तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदवद् भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः,
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्॥

बिना भक्ति-भावनाके जो एक बार भी रामनाम ले लेता है, उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है और जब रामके रसिक उपासक 'रामनाम' जप करके रामपद प्राप्त कर लेते हैं तो इसमें आश्चर्य किस बातका है?' अतः तुलसीदासजीने भी लिखा है,

भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥

सन्त तुलसीदासके इस कथनका समर्थन 'महाभारत'के निम्न श्लोकसे भी हो जाता है,

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि।
तेषां नास्ति भयं पार्थ राम नाम प्रसादतः॥ (महाभारत)

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है, 'हे पार्थ जो मानव श्रद्धासे अथवा अश्रद्धासे एकबार भी रामनामका उच्चारण कर लेते हैं। उन्हें समस्त संसारमें कहीं भी भय नहीं है।'

शिव और राममें कोई भेद नहीं है। जो शिव है वही राम है। स्कन्धपुराणके काशी खण्डमें लिखा है, जटाधारी, तपस्वी, भगवान् शंकर काशीकी गलियोंमें घूम-घूमकर कहते हैं, 'आनन्ददायक 'रामनाम' श्रवणरूपी दोनेसे पीने योग्य है। वही रामनाम तारक

मन्त्र है। वही प्रणव मन्त्र ओंकार है।' सन्त तुलसीदासजीने भी स्कन्द-पुराणके इस कथनका समर्थन किया है।

महामन्त्र जेइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
सोपि राम महिमा मुनि राया। सिव उपदेस करत करि दाया॥

और आगे पुनः इसी तथ्यके समर्थनमें लिखा है,

कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करौं बिसोकी॥

काशी पुरीमें जीवको मरते समय भगवान् शंकर जिस मन्त्रका उपदेश देते हैं, वह मन्त्र रामनाम ही है, इस कथनका समर्थन 'आध्यात्म रामायण'से भी होता है।

अहो भवन् नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यां मनिशंभवान्या।
मुमूर्षभावस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

भगवान् शंकर स्वयं श्रीरामसे कह रहे हैं—आपका नाम जपता हुआ कृतार्थ होकर मैं काशी पुरीमें निवास करता हूँ। और मरते समय मुक्तिके उपासकोंको रामनामका उपदेश करता हूँ। रामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए, भगवान् शंकरने कहा है।

परमेश्वरनामानि, सन्त्यनेकानि पार्वति।
परन्तु रामनामेदं, सर्वेषामुत्तमोत्तमम्॥
नारायणनामानि कीर्तितानि-बहून्यपि।
आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः॥ (महारामायण)

भगवान् शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा है, हे पार्वती! परमेश्वरके अनेकों नाम हैं। उन समस्त नामोंमें रामनाम सबसे महत्त्वपूर्ण है। उस परब्रह्म परमात्माके नारायण आदि अनेक नाम हैं। जिस प्रकार शरीरमें आत्माका प्रकाश रहता है, उसी प्रकार समस्त संसारके अन्धकारको दूर करनेके लिए नाम प्रकाशस्तम्भ है।

जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक ते एका।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होहु नाथ अघ खग गन बधिका॥

इस कलिकालमें जप, यज्ञ, होम, अनुष्ठान और तप द्वारा सिद्धि प्राप्त करना सरल नहीं है। अन्य युगोंमें तप यज्ञ, योग द्वारा मानव संसारसागरको पार करनेमें समर्थ रहता था किन्तु कलिकालमें भवसागर पार करनेके लिए 'राम' नाम जपको अत्यन्त सरल और सुलभ साधन बताया गया है। श्रीमद्भागवत-महापुराणमें महर्षि व्यासजीने लिखा है।

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन न समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ रामस्य कीर्तनात्॥ (श्रीमद्भागवत)

सन्त तुलसीदासजीने भी इस कथनको भली भाँति स्वीकार किया है।

एहि कलिकाल न साधन दूजा। योग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥

कलिकालमें रामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए ब्रह्मसंहितामें लिखा गया है।

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन् मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानुषाणामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

जीव रामनाम दो अक्षरोंको सदा स्मरण करता हुआ मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। किन्तु कलियुगमें पापी मनुष्योंके लिए दूसरे धर्मका अनुसरण करनेका अधिकार ही नहीं है। अर्थात् दूसरोंके धर्मका अनुसरण नहीं करना चाहिए।

इस तथ्यको तुलसीदासजीने निम्न प्रकारसे प्रकट किया है।

नहि कलिधर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू॥

भक्त प्रह्लादजीने अपने पितासे कहा, 'पिताजी। रामनाम जपनेसे भय कहाँ रह सकता है? मानवके त्रितापोंको दूर करनेके लिए ही रामनाम एकमात्र औषधि है। पिताजी मेरे शरीरकी ओर देखिए, (आपकी बहिन द्वारा जलायी गयी) अग्नि भी मेरे गात्रके स्पर्शसे पानीके समान शीतल हो गयी। यह रामनामका ही प्रभाव है।'

रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

सन्त तुलसीदासजीने भी लिखा है,

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत शिरोमनि भे प्रह्लादू।
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नामू। पायेउ अचल अनूपम ठामू॥
रामनाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल॥

कलिकालरूपी हिरण्यकश्यपको मारनेके लिए रामनाम नृसिंह भगवान् हैं। जैसे भगवान् नृसिंहने भक्त प्रह्लादकी रक्षा की उसी प्रकार रामनाम मन्त्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद से रक्षा करनेके लिए महामन्त्र है।

आदिकविने लिखा है, रामनाम एकबार उच्चारण करनेमात्रसे मानवके महापाप नष्ट हो जाते हैं। सन्त कवि तुलसीदासजीने भी इसका समर्थन किया है।

ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदान।
राम चरित सत कोटि मंह लिय महेस जिय जान॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

(आदि० महर्षि बाल्मीकि)

'राम' शब्दमें 'र' और 'म' दोनों वर्ण अन्य वर्णोंसे निराले हैं कि अन्यान्य अक्षरोंके ऊपर ही रहते हैं। अर्थात् शीर्षस्थ हो जाते है। र '`' के रूपमें और 'म' (ं) के रूपमें हो जाते हैं। इस तथ्यका निरूपण महारामायणमें हुआ है।

निर्वर्णरामनामेदं, केवलं हि स्वराधिपम्।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यंजनम्॥
एक छत्र एक मुकुट मनि सब वरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नामके वरन बिराजत दोउ॥ (तुलसीदास)

पद्मपुराणमें भी इसका निरूपण हुआ है।

रकारो ध्वजवत् प्रोक्तो मकारः छत्रवत्तथा।
सर्ववर्णशिरस्थो हि राम इत्युच्यते बुधैः॥

महाभारतके सत्योपाख्यानमें भगवान् शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा है, 'हे पार्वती! संसारमें कई वस्तुएँ आश्चर्यजनक हैं। बालूसे तेल निकालना भी आश्चर्यकी बात है। और पानीसे घी भी नहीं निकलता। अतः बालूसे तेल और पानीसे घी भले ही निकल जाये किन्तु बिना रामनामके जप या बिना उनके भक्तिके मुक्ति नहीं मिल सकती। हे पार्वती! मैं भुजा उठाकर कहता हूँ कि जिनकी भक्ति रामनाममें है, वे धन्य हैं। और हे पार्वती! तुम भी धन्य हो जो रामनामकी महिमा जाननेके लिए प्रश्न किया। इस प्रसङ्गको सन्त तुलसीदासजीने भी लिखा है,

वारि मथे घृत होय वरु सिकता ते वरू तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरहिं यह सिद्धान्त अपेल॥
मसकहिं करहिं विरंचि प्रभु अजहिं मसक ते हीन।
अस विचारि तजि संसय रामहिं भजहिं प्रवीन॥

रामनामके महत्त्वको भगवान् शंकरने भलीभाँति समझा था।

सन्तत जपत सम्भु अविनासी, सिव भगवान् ज्ञान गुन रासी।
नाम प्रसाद सम्भु अविनाशी, साज अमंगल मंगल रासी॥

'रुद्रयामल', नामक ग्रन्थमें लिखा है, भगवान् शंकरने माता पार्वतीसे कहा है, 'हे पार्वती' मैं श्रीरामका स्वरूप हृदयमें ध्यान करके दो अक्षर 'राम' नामका जप करता रहता हूँ।'

अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षरद्वयम्।
श्रीरामस्वरूपस्य ध्याने कृत्वा हृदि स्थले॥

सन्त तुलसीदासजीने कहा है,

जासु नाम पावक अघ सूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥

रामनामका उच्चारण यदि एक बार भी हो जाय तो स्मरणकर्ताका मल धूल जाता है और मन साफ हो जाता है। और उसे मोक्ष मिल जाता है। पद्मपुराणमें भी लिखा है,

सकृदुच्चारयेद् यस्तु रामनामपरात्परम्।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥

सन्त तुलसीदासजीने भी कहा है,

वारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

एक बार रामनाम उच्चारणका तात्पर्य यह है कि एक बार ही सही सच्चे मनसे वह उच्चारण होना चाहिए। रामनाम ही ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा है। रामनाम अग्नि, सूर्य, और चन्द्रमा है। और दाह, प्रकाश, और शीतलताका कारण हैं। राम ही अणु-अणुमें व्यापक हैं। अतः तुलसीदासजीने भी लिखा है,

बन्दौ रामनाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।

महाभारतमें भी लिखा है, रामशब्दका रकार ही अग्निका बीजमन्त्र है। आकार सूर्यका बीजमन्त्र है। और मकार चन्द्रमाका बीजमन्त्र है। इस प्रकार रामनाम ही अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा है। और तीनों मिलकर संसारका कल्याण कर रहे हैं,

रकारोऽनिलः बीजं स्यादकारो भानुबीजतः।
मकारः चन्द्रबीजं च त्रिबीजे धार्यते जगत्॥

इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें रामनाम व्याप्त है और रामनाममें ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। रामनामके बलपर ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं। रामनामके बल शिवजी संहार करते हैं और रामनामका ही बल पाकर विष्णु पालन करते हैं।

रामनामप्रभावेण स्वयम्भू सृज्यते जगत्।
विभर्ति सकलं विष्णुः शिवः संहरते पुनः॥ (शिव संहिता)

सन्त तुलसीदासजीने भी लिखा है, कि रामनाम ही विधि, (ब्रह्मा) विष्णु, और हर (शंकर) है। रामनाम है वेदका प्राण अर्थात् ओंकार है। वह रामनाम निर्गुण है। वही सगुण है। और गुणोंका आकार है।

विधि हरिहर मय वेद प्राण सो।
अवगुण अनुपम गुण निधान सो॥

रामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए नारदजीने कहा है,

यद् दिव्यनामस्मरतो संसारो गोष्पदायते।
स्वानन्यभक्तिर्भवति तद् रामपदमाश्रये॥ (नारदसंहिता)

जो रामनामका स्मरण करता है, वह संसार रूपी भवसागरको 'गोके खुर'के समान पार कर जाता है। वह रामकी भक्ति प्राप्त करके उसी रामको प्राप्त कर लेता है और उसी राममें लीन हो जाता है। सन्त तुलसीदासजीने भी इसे माना है।

सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।

एक बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'रामनाम' जपनेके लिए प्राणिमात्र अधिकारी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और श्वपच सभी रामनामका स्मरण कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें भी लिखा है,

अहोवत श्वपचोऽतो गरीयान्। यद् जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुः......................

यह महान् आश्चर्यकी बात है कि यदि श्वपच भी रामनामका स्मरण कर ले तो वह श्रेष्ठ है। और उसको तप, जप, होम, तीर्थस्नान, आदिका फल मिल जाता है। उसको वेद पढ़नेका फल मिल जाता है।

स्वपच सवर, खल, यवन, जड़ पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

पाई न गति कहि पतित पावन राम भज सुनु सँठमना।
गणिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर यवन किरात खल, श्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारेक तेऽपि, पावन होहिं राम नमामि ते॥

भगवन्नाम जपनेके लिए कोई भी प्राणी त्याज्य नहीं है।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणत्पुत्रो प्रचारितम्।
अजामिलोप्यगाद्धामो किं पुनः श्रद्धया पुमान्॥

अजामिल नामका पापी मरते समय अपने पुत्रका नाम 'नारायण' पुकारा और उसी कारण उसे स्वर्ग मिला। नारायणके दूत उसे बलात् स्वर्ग ले गये। यदि मानव श्रद्धासे भगवान् नामका जप करता तो उसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

जपत अजामिल गज्ञ गण राऊ। भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ॥

जो मानव संसारसागरसे पार जाना चाहता है, उसके लिए रामनाम ही सहारा है।

भवसागर चह पार जो जावा। राम कथा तस कह दृढ़ नावा॥

रामनामके प्रभावसे शुकदेव, सनकसनन्दन, आदि सिद्धजन ब्रह्मपद प्राप्त कर लिये।

शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥

रामनाम जप करनेके लिए देश, समय और संयम, पवित्रता, अपवित्रता आदिका कोई बन्धन नहीं है। सोते, जागते, चलते, फिरते, खाते, पीते, स्नान करते हर समय उसका उच्चारण किया जा सकता है।

न देशकालो नियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति उच्यते॥ (रुद्रयामल)

भगवान् शंकरने माता पार्वतीसे रामनामकी जप विधि बताते हुए समझाया है, 'हे पार्वती, रामनामका जप करनेमें देश-काल, नियम पवित्रता, अपवित्रता आदिका कोई नियम नहीं है। रामनाम उच्चारण मात्रसे मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। रामनाम सबसे मधुर, मंगलविधायक, अमंगलोंका नाशक, वेदोंका आधार और सत्, चित और आनन्दका स्वरूप है। जो इसे एकबार भी श्रद्धा या अश्रद्धासे उच्चारण करता है उसे भवतापोंसे मुक्ति मिल ही जाती है।

मधु-रमधुरमेतन् मंगलं मंगलानाम्।
सकल निगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्॥
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा।
भृगुवर नरमात्रं तारयेद् रामनाम॥ (महारामायण)

अतः तुलसीदासजीने भी रामनामकी महिमाको अपरम्पार माना है। और उसी रामनाममें योगीजन रमण करते हैं। उसको महिमा राम भी नहीं व्यक्त कर सकते।

●

तुलसी

नाता कौन तोड़ना सिखाता विषयोंसे हमें
भव्य भक्तिभाव खुद कर दिखलाता कौन ?
लाता कौन छोर मोर-पंख हरि-मस्तकसे
कनक-किरीट वहाँ सुन्दर सजाता कौन ?
जाता कौन झाँकी दिखा व्रजमें अवधकी भी
हाथ गोपीनाथके धनुष धरा पाता कौन ?
पाता कौन यश यह तुलसी न होते यदि
माथ झुकते ही राम श्यामको बनाता कौन ?

•

तुलसीके प्रति

तुलसी, तेरी तुलना कैसी !
सत्कवि, किस कविके मानसकी प्रतिभा तेरी जैसी ?
विधिकी विविध सृष्टिमें अनुपम मनुज-मूर्त्ति है जैसी,
सकल इन्द्रियोंमें कौशलमय दृष्टि मनोरम कैसी !
तेरी विमल कलाकृति वैसी । तुलसी, तेरी०
ललित कलामय सुकवि-काव्यमें रुचिर व्यञ्जना जैसी,
सहृदय हृदय-हृद्य स्वाभाविक प्रीति पुरातन जैसी;
तेरी रुचिकर रचना वैसी । तुलसी, तेरी०
लोक-प्राणियोंपर परमेश्वरकी अनुकम्पा जैसी,
जननीकी वात्सल्य-वेदना सन्ततिके प्रति कैसी !
तेरी जन-हितैषिता वैसी । तुलसी, तेरी०

भवमें विभव-सम्पदा सुखकर प्रति नरको है जैसी,
जीवनमें जन-जनकी आशा कल्पलता-सी जैसी;
तेरी भक्ति-भावना वैसी। तुलसी, तेरी०

कान्ता-कलित-कटाक्ष-क्रिया-कृति युवक-हृदय हर जैसी,
शिशुके सरल हृदयकी निश्छल गिरा सत्य प्रिय कैसी!
तेरी गीतावलि भी वैसी। तुलसी, तेरी०

गङ्गा-सी गङ्गा पावन हैं, सुधा-सुधा ही जैसी,
दिनकर-किरण कलाधर-छविकी उपमा किससे कैसी?
कविवर, तेरी कविता वैसी। तुलसी, तेरी०

मधुकी मधुर मिठास, सेवकी सरस स्वादुता जैसी,
प्रसू-पयोधर-पयोधारकी समता जगमें कैसी?
तेरी सहज सरसता वैसी। तुलसी, तेरी०

नगपति-शृंग-तुङ्गता, जलनिधिकी अगाधता जैसी,
धरा-धारणा शक्ति सदासे है अपनी ही ऐसी;
तेरी गुण-गरिमा भी वैसी। तुलसी, तेरी०

राम-समान राम पुरुषोत्तम, सीता सीता-जैसी,
तेरी भक्ति-तपस्या-कविता बनी त्रिपथगा वैसी;
कैसे कहें?—सुमहिमा कैसी! तुलसी, तेरी०

सञ्जीवनी बनी जनताकी, माता-तुल्य हितैषी,
तेरी रामायण है जगमें रामायण ही जैसी;
तेरी कीर्त्ति सुकृति ही ऐसी! तुलसी, तेरी०

तुलसी-कला कीर्त्तिमय कविता जन-जनको प्रिय जैसी,
मेरी लघुतम उत्तम यह कृति कुछ अंशोंमें वैसी!
किंवा कहें आप ही कैसी? तुलसी, तेरी०

नन्दकिशोर झा, श्रीनगर, बेतिया

चारों ओर बोले वनमोरवा हे हरी !

सावनके लोकगीतोंमें कृष्ण कन्हैयाकी मनोरम झाँकी

श्रीनागेश्वर सिह "शशीन्द्र" विद्यालंकार

★

सावनके आते ही गाँवोंमें झूलोंका झमेला लगा। घर-घर झूले लगे। आम्र वनोंमें कजलोकी स्वरलहरी लहराने लगी। वहाँ झूलेपर ही राधाकृष्णके रूपमें ग्रामबालाएँ झूलनेकी तैयारी करती हैं। वहाँ झूला झूलते समय कृषक किशोरियाँ गाती हैं—

झूला झूलत श्याम किशोरी
झूला लगी कदम्बकी डारी
हरित सुरेशम डोरी
झूला झूलत श्याम किशोरी
अगल बगल सब सखियाँ झुलावें
झूमि झूमि झुकि पेंग लगावें
गावत राग मलार एक संग
ब्रजमंडल की गोरी

इस तरह अन्य स्थानोंपर भी झूले लगते हैं और ग्रामबालाएँ राधाकृष्णके रूपमें झूले झूलती हैं। वहाँ एक ही साथ सब मिलकर गाती हैं—

ओही कुंज वनवाँमें कदम्बकी डरिया रामा
झोंकेदार झमकेला हिलोरवा हे हरी
एक ओर बैठी वृषभान किशोरी रामा
एक ओर नन्दकिशोरवा हे हरी
ललिता विसाखा दोनों पेंगवा चलावें रामा
धरि धरि रेशम की डोरिया हे हरी
मन्द मन्द गावें अति रस पावें रामा
चारों ओर बोले बनमोरवा हे हरी

कृष्ण कन्हैया प्रीतम प्यारा रामा
देखि देखि जियरा हरसे हे हरी

फिर उस कृष्ण कन्हैयाके झूलेकी झाँकीमें अन्तरकी स्वरलहरी सुनकर अन्य ग्राम-बालाएँ भी गाने लगती हैं—

कदम्बकी डारी जहाँ पीले फूल फूली रामा
हरि हरि झूलत झूला कृष्ण प्यारी हे हरी
कोयल किलकारी भरे मोरनी पुकारी भरे
हरि हरि पैजनी बजावे राधा प्यारी हे हरी
सुरुख किनारीदार सारी की विहारी रामा
हरि हरि झूलत लटकि लटकारी हे हरी

सावनकी लहर और झूलेकी झमकका आनन्द साथ-साथ चलता है। फिर झूलेका पेंग तेज होते ही सब मिलकर कृष्णसे कहती हैं—

झूला धीरेसे झुलाव बनवारी हे साँवलिया
एक ओर झूलें कृष्ण, एक ओर राधाप्यारी हे साँवलिया
जोरसे झुलावें झुलही न पावे, लटके कदमवाकी डारी हे साँवलिया
झूला धीरे से झुलाव बनवारी हे साँवलिया

कृष्णके साथ झूला झूलते समय किशोरियाँ इतनी तन्मय हो जाती हैं कि उन्हें अपना पता भी नहीं रहता। उनकी चुनरी भी हवासे खेलने लगती है। वैसे अवसरकी यह कजरी कितनी अच्छी लगती है—

हरि संग डारि डारि गलबहियाँ
झूलत बरसाने की नारी
प्रेमानन्द मगन मतवारी
सुधि बुधि तनमा बिसारी

इस तरह सावन मस्ती लुटाता है। श्याम रंग ग्राम घरमें बिखेरता है। झूले और कजली रसरंग गाँव-गाँवको व्रजका गाँव बना देता है। भला ऐसे सावनमें गाँवके किशोर किशोरियाँ कृष्ण और राधाके रंगमें सराबोर हो नहीं झूले तो झूले कौन ?

●

वृन्दावनकी छवि

ध्यान मञ्जरी

स्वर्गीय श्री ईश्वरीप्रताप नारायण सिंह 'प्रताप'
(पडरौना राज्य)

★

जय श्री नन्दकिशोर जयति वृषभान किशोरी।
जीवन रसिक अनन्य सदा सुन्दर यह जोरी॥

सुन्दर स्यामल गौर वेनु बीना कर भ्राजै।
नव यौवन मद मत्त सदा घूर्णित दृग राजै॥

क्रीडत कुञ्ज कुटीर कोटि क्रीडा रस रासी।
वारत ब्रह्मानन्द वृन्द वृन्दावन वासी॥

कञ्चन मनिमय रचित पंच जोजन वृन्दावन।
जेहि सेवत सुर वृन्द धारि खग मृग द्रुम तृन तन॥

फूलि रहे फलि रहे फैलि रहे लता ललित द्रुम।
राजत विविधि निकुंज पुंज अलि कुल मद विभ्रम॥

कलसु कलित द्रुम अवलि काह कहिये छवि ताकर।
जेहि साजत नित रहत आय माली कुसुमाकर॥

फल फूलनिके भीर अवनि द्रुम साख रहे झूमि।
जनु मन स्यामा स्याम अंहि अंभज चाहत चूमि॥

तापर प्रफुलित जाल माल बेलिनकी सोहैं।
झूमि रहे छवि भौर झुण्ड भंवरनकी मोहैं॥

राजत खण्डरि साल पुंज मुंजर सिर धारैं।
गुंजत अलिकुल मत्त मत्त कलरव किलकारैं॥

अभिनव विटप असोक सोक हारी छवि छाजैं।
सुर मुनिमन रमनीय पुंज कोमल दल राजैं॥

वल्लि मल्लिका जाल मालती चहुँ दिसि फूले।
मानहुँ विसद वितान कुंज प्रति कुंजन झूले॥

विविध भाँतिके वृच्छ स्वच्छ वृन्दारक राजैं।
सुखमा सुखद अनूप रूप अद्भुत अति छाजैं॥

किसलय कोस प्रसून पुंज अद्भुत छवि वनकी।
निरखि रुचिरता कुंज रहत नहि सुधि तन मनकी॥

तिनपर अधिक सोहात भाँति बहु सुन्दर राजैं।
रंग रंग विहंग विलास ललित द्रुम डारन साजैं॥

सारिक कीर चकोर मोर कोकिल किलकारत।
मानहुँ मुनिजन वृन्द वेदकी रिचा उचारत॥

छाया सुखद निकुञ्ज पुञ्ज आनंद उर सरसत।
डोलत त्रिविधि समीर धीर सौरभ रस बरसत॥

सुमन अलिन कौ पुञ्ज कुञ्ज वीथी सब साँकर।
संतन सुखद विलास बास कीन्ही कुसुमाकर॥

वृन्दावन छवि छाइ चारु चित सुर मुनि लोभा।
साज्यौं सकल सकेलि मनो त्रिभुवनकी शोभा॥

पुरुष प्रकृति तें परे धाम वृन्दावन भाई।
अति दुर्गम दुरलच्छ भेद वेदहु नहिं पाई॥

गुल्मलता तन धारिवास ब्रह्मादिक चाहैं।
प्राकृत उक्त न कौन रूप ताको अवगाहैं॥

●

शान्ति किसे मिलती है ?

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर स्पृहा, ममता और अहंकारसे रहित होकर विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। मैं (श्रीकृष्ण) सब यज्ञोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर तथा समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद हूँ। इस प्रकार तत्त्वसे मुझको जान लेनेपर मनुष्य शान्तिको पा लेता है।

★★★

पूतना-उद्धार लीला

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

★

आचार्य वल्लभके मतसे पूतना-उद्धार-लीला प्रमाणप्रकरणके अन्तर्गत आती है। इस लीलाके द्वारा भगवान्के वीर्यका निरूपण है। उनका एक-एक काम अनेक-अनेक प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए होता है। पूतना अविद्या है। वृत्त्यारुढ़ ज्ञानके समान अवतीर्ण भगवान् उसका नाश करते हैं। दुष्टका निरोध होता है। दुष्टाको भी सद्गति मिलती है। बालकोंकी रक्षा होती है। नन्दादि भक्तोंके हृदयसे वसुदेववाक्य-जनित भयका निराकरण होता है। पूतनाकी मृत्युसे भक्तोंके वाह्य भयके निवारणके साथ भगवान्के अनुग्रहसे अत्यन्त अनधिकारी जीवनका भी कल्याण हो जाता है।

नन्दबाबाके हृदयमें सत्यवादी वसुदेवके इस वचनपर कि 'गोकुलमें उत्पात हो रहे हैं', पूर्ण विश्वास है। इसलिए उन्होंने मन-ही-मन भगवान्की शरण ग्रहण की। सत्पुरुष विपत्तिके समय भगवान्का ही पल्ला पकड़ते हैं। यहाँ 'शरण' शब्दका अर्थ अपना घर भी होता है। जैसे मनुष्य आँधी-तूफान आनेपर अपने-अपने घरमें घुसकर सुरक्षित हो जाता है, वैसे ही नन्दबाबा अपने परम आश्रय भगवद्भुवनमें प्रविष्ट हो गये। गोकुल तो दूर था, परन्तु यह घर तो सर्वथा अपने हृदयमें ही था। सच है, भक्तोंके एकमात्र शरण (गृह और रक्षक) भगवान् ही हैं।

विघ्न-बाधा-राक्षसी वहीं अपना बल प्रकट कर सकती है, जहाँ भगवान्के रक्षोघ्न श्रवण-कीर्तनादि न हों। जहाँ स्वयं भगवान् ही विराजमान हैं, वहाँ उत्पातका क्या भय है?

श्रीहरि सूरि कहते हैं कि कंसने अपने मनमें विचार किया कि जो बालक मुझ सरीखे वीरका वैरी होकर प्रकट हुआ है, वह अपूत = अपवित्र, न = नहीं हो सकता (न और अ दोनों कट गये) इसलिए वह अवश्य ही पूत होगा। उसको लानेके लिए पूतना (पूतं नयति) को भेजना ही उचित होगा। 'पूतना' शब्दका यह भी अर्थ सर्वमान्य है कि वह अविद्यारूप होनेके कारण बड़े-बड़े पूतात्मा अर्थात् पवित्रात्माओंको भी अभिमानके वशमें करके उड़ा ले जाती है।

पूतनाने गोकुलके साथ अपना मेल मिलाया। स्थान है गोकुल अर्थात् इन्द्रियोंका कुल और मैं हूँ खेचरी अर्थात् इन्द्रियोंमें विचरनेवाली। 'ख' और 'गो' दोनों एक ही तो हैं, इसलिए उसने वहाँ जानेका निश्चय किया।

५

वह नन्दादि गोपोंके मथुरा जानेपर गोकुल गयी। इसका अभिप्राय है कि अच्युत-बलशाली (अत्यन्त बलयुक्त अथवा कृष्ण और बलरामसे युक्त) गोकुलको भी केवल अबला (स्त्री) गणसे युक्त मान लिया। क्यों न हो, बकी जो थी।

उसने हेमाङ्गना अर्थात् स्वर्णवर्णा प्रमदाका रूप धारण किया। इसका अभिप्राय यह है कि गोकुल (गोकुल गाँव या इन्द्रियसमूह) को मोहित करनेके लिए सोना और स्त्री दो ही साधकके चित्तको मोहित करते हैं, इसलिए उसने सुवर्णाङ्गनाका रूप धारण किया। क्या सुन्दर सूक्ति है!

> हेमाङ्गने एव विमोहनैकतात्पर्यहेतू खलु गोकुलस्य।
> सा मन्यमानैवमुरीचकार रूपं सुवर्णाङ्गवराङ्गनायाः॥

वह अपने शृंगार, सौन्दर्य, हाव-भाव चितवन, मुसकान एवं मीठी वाणीसे गोकुल-वासियोंका मनोहरण करती हुई आगे बढ़ी; क्योंकि वह सुमनोहर = देवशिरोमणि श्रीकृष्णका हरण करना चाहती थी। कोई भी योषित अनङ्ग-भावकी प्राप्तिके लिए अपने पतिके पास जाती है। ठीक है, उसे अनङ्ग—कामकी प्राप्ति नहीं हुई तो क्या, अनङ्ग (अङ्गराहित्य = मृत्यु अथवा मोक्ष) तो मिला। उसका भाव तो अमङ्गल था, परन्तु रूप मंगलमयी श्रीका धारण-कर कृष्णकी ओर चली; इसीसे सद्गतिकी प्राप्ति हुई। श्रीका रूप धारण करना एक शकुन है। साक्षात् लक्ष्मीका दर्शन लोकमें दुर्लभ है, इसलिए उसका कृत्रिम रूप भी लोगोंके आकर्षणका कारण बन गया।

वेदान्तकी रीति यह है कि पहले 'नेति-नेति' निषेध-वचनके द्वारा नामरूपात्मक विश्व-प्रपञ्चका निषेध करके व्यतिरेक-मुखसे परमात्माको जाना जाय। पीछे अन्वय-दृष्टिसे—विधिमुखसे 'सब परमात्मा है', ऐसा अनुभव किया जाय। परन्तु इसने निषेध-वचनपर तो ध्यान दिया नहीं, पहले ही विधि अथवा विधिविधानको आगे रखकर गोकुल (इन्द्रियों) में भगवान्‌को ढूँढ़ने निकल पड़ी। इसीसे यह गति हुई।

भगवान् श्रीकृष्ण भस्माच्छन्न अग्निके समान अपनी श्याम-दीप्तिसे आच्छन्न होकर पर्यङ्कपर विराजमान हैं। अजी, इस अग्निके सामने विष या दुर्विषयकी क्या दाल गलती है?

उसको देखकर माताएँ आश्चर्यचकित रह गयीं। उनकी दृष्टि कृष्णसे हटकर पूतनापर चली गयी। यह बात कृष्णको पसंद नहीं है। उन्होंने निश्चय किया कि जिसपर भक्तकी दृष्टि है, उसकी गोदमें मेरा जाना आवश्यक है। वह किसी दूसरे बालकका अनिष्ट न करे, इसके लिए मेरी ओर आकृष्ट होना भी अपेक्षित है। समझ-बूझकर उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये, इसपर श्रीहरि सूरिकी काव्यधारा बड़े वेगसे निकली है। कुछ उदाहरण देखिये :

सर्वज्ञ प्रभुने अपने स्वच्छन्द लीला-विहारमें भी यह संकेत दिया कि जब परमात्मा सुषुप्तिका अनुकरण करता है अर्थात् अज्ञात रहता है तभी मनुष्यकी अनार्य स्वच्छन्द प्रवृत्ति पापप्रद होती है, अन्यथा नहीं। आँख मींचनेका यही भाव है :

सुप्तानुकारिणि मयीह भवत्यनार्य-
स्वैरप्रवृत्तिरघदा किल नान्यथेति।
तत्तादृशस्थिततया प्रभुणा व्यबोधि
तत्स्वैरसंविहरणेष्वपि सर्वनेत्रा॥

एक शब्दालङ्कारका आनन्द लीजिये—ह्यस्तन (अतीत कल), श्वस्तन (आगामी कल), स्वस्तन (अपना स्तन)। कल देखी नहीं, कल देखूंगा नहीं। न भूतमें रही, न भविष्यमें रहेगी; तब आज यह अपने स्तनोंमें विष लगाकर आयी है, यह देखनेकी क्या आवश्यकता है?

श्रीकृष्णने अपने मनमें विचार किया कि 'मैं केवल अपनी रक्षा ही कर लूँ या त्रिलोकीके त्रैकालिक अखिल बालकोंका पालन भी करूँ? अन्तर्दृष्टिसे यही देखनेकेलिए दीन त्राणपरायण अनुपम कृपाशाली बालैककल्याणदर्शी प्रभुने दुष्टनिरोधकी दृष्टिसे नेत्र बंद कर लिये :

कार्यं स्वावनमेव केवलमितः किं वा त्रिकालोदित-
त्रैलोक्याखिलबालपालनमपीत्यन्तर्दृशा वीक्षितुम्।
दीनत्राणपरायणोऽतुलकृपो बालैककल्याणदृग्
दुष्टध्वंसनदीक्षितः किमु विभुस्तादृक्तयाऽऽसीत्तदा॥

"यह कामिनी अन्धी हो गयी है। पिलाना चाहती है दूध और रूप धारण करके आयी है पत्नीका। मूर्खे! मैं जान-बूझकर दूध पिलानेवालीके पत्नीरूपको क्यों देखूं?" इसलिए आँखें बन्द कर लीं।

भगवान्ने अपनी आँखें इसलिए बंद कीं :

ऐहिकं तु न हि साधनमस्या दृश्यतेऽण्वपि पुरातनमस्ति।
किं न वेति भगवान् ध्रुवमन्तश्चिन्तनाय कृतनेत्रपिधानः॥

कि इसने वर्तमान जन्ममें तो थोड़ा-सा भी कोई साधन नहीं किया किन्तु पूर्वजन्ममें कोई साधन किया है या नहीं, यह अपने हृदयमें विचार करनेके लिए आँखें बंद कीं।

यदि मनुष्यके जीवनमें अतर्कित रूपसे कोई ऐसा काम करनेका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाय जो पहले कभी न किया हो तो बुद्धिमान् पुरुषको आँख बंद करके उसका निर्वाह कर लेना चाहिए। जैसे कि कड़वा घूँट पीते समय करते हैं। क्या इसी लौकिक पद्धतिका अनुसरण करके श्रीकृष्णने इस पापिनीके हाथोंका संस्पर्श सहन किया?

अनायत्या प्राप्तः क्वचिदपि पुरा यो न विहितः
प्रसङ्गश्चेत्तस्यावहनमिह कार्यं मतिमता।
निमील्याक्षीत्येवं जनसरणिमालोच्य किमसौ
तथा चक्रे कर्तुं तदघकरसंस्पर्शवहनम्॥

प्रभुने यह विचार किया कि बड़े-से-बड़े अनिष्टकी निवृत्ति करनेमें भी योग समर्थ है। इस क्षुद्रदृष्टि पूतनामें क्या रखा है, इसलिए नेत्र बंद करके श्रीकृष्ण योगस्थ हो गये।

भगवान्के उदरवर्ती लोक व्याकुल हो गये। उनमें हाहाकार मच गया कि यह दूधके बहाने प्रभुको विष पिलाना चाहती है। यदि उन्होंने पी लिया तो आगे हम लोगोंकी क्या

गति होगी ? मुझे ऐसा लगता है कि उन्हीं लोकवासियोंको अभयदान करनेके लिए प्रभुने नेत्रसम्मीलन कर लिया :

दातुं स्तन्यमिषाद्विषं किल धृतोद्योगेयमास्ते यतः
पीतं चेत्प्रभुणा पुरो बत गतिः का वास्मदीया भवेत् ।
इत्थं व्याकुलतान्निजोदरगतानालोक्य लोकान्प्रभुः
वक्तुं भात्यभयप्रदानवचनं चक्रेऽक्षिसम्मीलनम् ॥

जो स्त्री लोगोंमें माताका भाव दिखाये, मीठे वचन बोले; परन्तु अपने विषैले हृदयमें क्रूर हो, उसका मुख नहीं देखना चाहिए, यह शिक्षा देनेके लिए ही मानो श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये ।

यदि करुणा-दृष्टिसे इसे देखूंगा तो यह निष्पाप हो जायगी और उग्र दृष्टिसे देखूँगा तो भस्म हो जायगी। इस प्रकार दोनों ही दशाओंमें इसके हृदयमें वासना-संस्कार शेष रह जायँगे और पुनर्जन्मकी प्राप्ति होगी । वह न हो, यही विचार करके दीर्घ दृष्टिवाले कृपालु कृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिये ।

दृष्टा चेत् करुणादृशेयमनघा स्याच्चोग्रया भस्मसा-
देवं चेदवशिष्यते ह्युभयथा तद्वासनासंस्कृतिः ।
एतस्या हृदये तया च भविता जन्मान्तराप्तिः पुनः
सा मा भूदिति दीर्घदृष्टिरकरोदीशः स्वदृङ्मीलनम् ॥

यह उत्प्रेक्षा कितनी आनन्ददायक है; रसास्वादन कीजिये :

अस्यै दुष्टान्तरायै रिपुहितमतये कामपीशो न दद्या-
न्निम्नां वा प्रोन्नतां वा गतिमिह यदसौ सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः ।
आवाभ्यां स्वात्ममार्गौ मुनिसुजननुतो दीयते नेति मन्ये
श्रेशं चक्रेऽक्षियुग्मं रविविधुलसितं पक्ष्मसद्द्वारगुप्तिम् ॥

भगवान्ने कुछ नहीं सोचा । सूर्यचन्द्रोल्लसित श्रीकृष्ण-नेत्रने ही यह विचार किया कि श्रीकृष्ण तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र — सर्वेश्वर हैं । वे इस दुष्टहृदया शत्रुहितकारिणी पूतनाको सद्गति दें या दुर्गति, वे जानें । हम दोनों अपने वन्दित मुनि सुजन-सूर्यमार्ग (देवयान) या चन्द्रमार्ग (पितृयान) से इसको सद्गति नहीं दे सकते । इसलिए नेत्रोंने ही पलकों द्वारा अपने मार्ग बंद कर लिये ।

पूतनाके नेत्र भी तो नेत्र ही हैं। भगवान्के नेत्रोंने सोचा—'हमें तो जातीय पक्षपातसे मुक्त रहना चाहिए; क्योंकि ये राक्षसीके मुखकी शोभा बढ़ाते हैं; हम इन्हें नहीं देखेंगे ।

भगवान्के नेत्रमें निमि बैठे हैं । उन्होंने कहा—'चराचरात्मा प्रभु भले इस दुष्टाको अन्तर्दृष्टिसे देखें, यह बहिर्दृष्टिसे देखनेयोग्य नहीं है ।' उन्होंने ही नेत्र बंद कर लिये ।

यदि मैं अपने सूर्याश्रित और चन्द्राश्रित नेत्रोंसे इसे देखूँगा तो यह तामसी निशाचरी पहचान ली जायगी और मर जायगी । तब लीला कैसे होगी ? यही सोचकर श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये ।

भगवान्के नेत्र राजहंस हैं। उन्होंने इस बकीका मुख नहीं देखा, यह सर्वथा युक्ति-युक्त है। महात्मा लोग अयोग्यके दर्शनके लिए उत्कण्ठित नहीं हुआ करते।

यह निशाचरी दूध पिलानेके बाद मेरे वन्दनीय पूर्वज हरिणाङ्क चन्द्रमाके समान हो जायगी; इसलिए पहले ही इसे हरिणाङ्क बना दो, यह सोचकर श्रीहरिने उसके अंकका आश्रय लिया—'हरिणा अङ्कम्।'

इस प्रसङ्गपर श्रीजीवगोस्वामीजी महाराजने कुछ भाव लिखे हैं :

१. बाललीलामें शिशुका नेत्र बंद रहना ही स्वाभाविक है।

२. भीरुता प्रकट होती है।

३. ऐसी दुष्टाका दर्शन न करना ही अभीष्ट है।

४. यदि भगवान् देखें तो उनकी दृष्टि स्वभावसे हो ऐसे दुष्टोंका दमन कर दे।

५. पूतनाके कल्याणनिधि भगवान् साक्षात् वध करनेमें लज्जित होते हैं—और उस लज्जाके आच्छादनके लिए नेत्र बंद करते हैं।

६. भगवान्का हृदय इतना कोमल है कि मरते समय पूतनाकी विकलता और छटपटी नहीं देख सकते।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्तीने भी प्रायः इन्हीं भावोंको दुहराया है।

श्री हरिसूरि कहते हैं कि 'प्रभो! जब आपके पास पूतना आयी तब माता, गोपी अथवा गोप किसीने भी उसको नहीं भगाया, यह देखते हुए भी मुझे अपने भाई बन्धुओंके सहारे क्यों छोड़ते हो? जब तुम्हारे ही भाई-बन्धु तुम्हारे काम नहीं आये तब मेरे भाई-बन्धु कहाँसे मेरे काम आयेंगे?

इसके बाद पूतनाने अपना विषदिग्ध स्तन श्रीकृष्णके मुखमें डाल दिया। भगवान्ने विचार किया कि क्षीरसागर या स्तनका समग्र विष तो शंकर ही पीते हैं : परन्तु अन्तरका विष तो मैं ही पी सकता हूँ और कोई नहीं; इसलिए उन्होंने स्वयं पान किया।

गरुड़ और शेष मेरे सेवक हैं। विषाशन शंकर मेरी वन्दना करते हैं। इस जरासे विषमें क्या रखा है?

जैसे, सजल मेघ अत्यन्त शोभायुक्त होता है, वैसे मैं भी इसके स्तनका विष धारण करके अत्यन्त सुषमाशाली हो जाऊँगा।

जैसे लक्ष्मी पयोधिजा हैं, वैसे ही यह विषश्री भी पयोधिजा है। श्रीधर तो एक मैं ही हूँ।

विष किंचित् भी शेष न रह जाय, इसके लिए सम्मर्दनपूर्वक पान किया।

स्तन तो सबके जीवनका हेतु—दुग्ध देता है। यह विष क्यों दे रहा है? दुष्ट पूतनाका संग ही इसमें कारण है। इसलिए निर्दय पीड़न किया।

सविषा पूतनाको देखकर कृष्ण सरोष हो गये। सुरोचितका 'रो' है कृष्णमें, विकारका 'वि' है सविषामें।

समुद्रका विष पीनेवाले शंकरसे कृष्णने अपनी विशेषता दिखायी। पूतनाका विष पीकर उसे मोक्षामृतका दान किया।

इसके प्राणोंमें ही विशेष शक्ति है जो विषके साथ भी निरामय रहते हैं। इसलिए इन प्राणोंका संग्रह करना भी आवश्यक है जिससे विषका वीर्य व्याप्त न हो।

इस प्रसंगमें मूल देखनेसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि रोषसमन्वित प्रभुने प्राणोंके साथ स्तनका पान किया। अभिप्राय यह है कि रोष अर्थात् रोषाधिष्ठान रुद्रने प्राणोंका पान किया और कृष्णने केवल पयोमृतका। नेत्र बंद करके सम्भवतः इसीलिए रुद्रका आह्वान किया था।

पूतनाका मातृभाव है तो स्तनका विष भी अमृत हो जायगा। वात्सल्य-स्नेहका प्रभाव—स्वभाव ऐसा ही है। मेरा पुत्र-भाव है तो दूध पीनेमें क्या शङ्का ? ऐसी स्थितिमें पूतनाको मारनेसे मैं मातृघ्न हो जाऊँगा। यह सोचकर श्रीकृष्णने उसके प्राणापहरणके लिए क्रोधाधिष्ठाता-देव रुद्रको अपने साथ कर लिया।

जिसका हृदय विषमित है अर्थात् भेद-भाव, राग-द्वेषसे युक्त अथवा विषाक्त है, उसको तत्काल वैसा फल भोगना ही पड़ता है। पूतनाके चरित्रमें यह बात स्पष्ट है।

कोई कितना भी कुमार्गगामी हो, विषमस्वभाव हो, चाहे जिस किसी भावसे मुझे अपने हृदयमें धारण करे उसे मैं भव-बन्धनसे मुक्त कर देता हूँ !

इस विषयमें श्री हरिसूरिकी एक अन्य सूक्ति सुनिये—

> कश्चित् प्राणापहारावधि दुरपकृतिं दुर्जनः सञ्चिकीर्षुः
> प्राप्तश्चेदप्यमुष्मिन्नुपकृतिनिरतेनैव भाव्यं जनेन।
> श्रीखण्डेनेव साधूनिति किल भवता हृत्स्थितं ज्ञापयित्रा
> पापिन्यां पूतनायामुपकृतमपरं नैवं बीजं प्रतीमः॥

कोई दुर्जन भले प्राणापहारपर्यन्त अपकार करनेकी इच्छासे आया हो तो भी सज्जन पुरुषको सब प्रकारसे उसका उपकार ही करना चाहिए जैसा कि श्रीखण्ड करता है। प्रभो ! साधु पुरुषको अपने हृदयकी यही बात बोधन करनेके लिए आपने पापिनी पूतनाका भी उपकार किया। हमें इसका कोई दूसरा हेतु प्रतीत नहीं होता।

प्रभुने उसको निर्विष और निर्विषय दोनों ही बना दिया। पूर्व संस्कारके कारण ही उसका शव बड़ा हो गया।

नास्तिकोंके छः दर्शनके अनुसार उसका षाट्कौषिक शरीर छः कोसके वृक्षोंको तोड़कर धरतीपर गिर पड़ा।

गोपियाँ नन्दलालको पूतनाकी छातीपर चढ़कर उठा लायीं ! गोपोंका साहस नहीं हुआ। प्रेममें कितनी शक्ति है !

भगवान्‌की रक्षा करनेके लिए गोखुरकी धूलि, गोमय, गोमूत्र और गोपुच्छ काममें लाये गये। पहले गायोंसे भगवान्‌ने अपनी रक्षा करवा ली, फिर उनकी रक्षा की।

> भगवंस्त्वदपेक्षयापि शक्तिस्तव नाम्नि प्रबलेति मन्महे।
> त्रिजगत्कृतरक्षणस्य तेऽपि यदभूद्रक्षणकारि गोकुले॥

भगवन् ! हमारा पक्का निश्चय है कि आपकी अपेक्षा भी आपके नामकी शक्ति प्रवल है। आप तीन लोकोंकी रक्षा करते हैं और गोकुलमें आपका नाम आपकी रक्षा करता है। इसीसे गोपियोंने आपके नाम-कवचसे आपको सुरक्षित किया।

आनन्द वृन्दावन-चम्पूमें कहा गया है कि 'मैं दुधमुँहा शिशु हूँ। यदि दूध पीनेसे ही पूतना मर जाती है तो मेरा क्या दोष ?'

जब गोपियोंने लाकर शिशु कृष्णको माँकी गोदमें दिया तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि मेरा शिशु फिर लौट आया है। दूध पीनेपर तब कहीं जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

श्रीहरि सूरि कहते हैं कि 'पूतनाके शरीरसे सुगन्ध निकलनेका भाव यह है कि पूतनाके शरीरमें पृथ्वीका जो अंश क्लेश पा रहा था उसने सुगन्धके रूपमें अपनी प्रसन्नता प्रकट की। जिसके वक्ष:स्थलपर विराजमान होकर स्वयं भगवान्‌ने दूध पिया उसके शरीरसे सुगन्धकी उत्पत्तिमें आश्चर्य क्या है ?

अन्तमें श्रीहरि सुरि कहते हैं कि पूतना अनाचारण-प्रगल्भ थी यह कोई भले ही कहे, मैं तो समझता हूँ कि वह पूत (पवित्र) नाना आचरणोंमें प्रगल्भ थी, इसके लिए उन्होंने एक ही वाक्य का प्रयोग किया है—'पूतनानाचरणप्रगल्भा'।

पूतना थी दुर्मतिकी सीमा और कृष्णने प्रकट की कृपाकी सीमा।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने इस प्रसंगके अंशमें एक कैमुत्य-मण्डलीकी स्थापना की है। उनका कहना है कि जब मारनेकी नीयतसे आनेपर भी पूतनाको सद्‌गतिकी प्राप्ति हुई तब कोई उदासीनता, श्रद्धा अथवा श्रद्धाभक्तिसे भगवान्‌के पास आये तब तो कहना ही क्या ?

भगवान्‌के किसी भी आविर्भावको कुछ अर्पित करे तो मुक्ति मिलती है, फिर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णो अर्पित करे तो कहना ही क्या ?

यदि विषस्तन अर्पण करे तब भी कल्याणभागी हो जाय, फिर निर्विष वस्तु अथवा प्रिय, प्रियतर और प्रियतम वस्तु अर्पण करे तब तो कहना ही क्या ?

जब पूतना नामक प्रसिद्ध राक्षसीको भी मातृगति—सद्‌गति प्राप्त हुई तब मानुषी भक्त, अनुरक्त और वात्सल्य भाववती गाँवकी गोपियोंको मातृगति प्राप्त होगी; इसमें कहना ही क्या ?

इन सब प्रसङ्गोंमें वात्सल्यस्नेहैकजीवना श्रीमती यशोदा माताका नाम नहीं लिया गया है। उनको वन्दनीयताके सिंहासनपर विराजमान करके केवल प्रणतिपात्री ही माना गया है; क्योंकि उनके लिए सद्‌गति प्राप्त करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। उनके नाम-स्मरण एवं ध्यानसे भी दूसरोंको सद्‌गति प्राप्त होती है।

कहना न होगा कि इस प्रसङ्गमें वात्सल्य-स्नेह-स्वरूप श्रीयशोदा माताकी निरतिशय महिमा प्रकट की गयी है। देखनेमें यह श्रीकृष्णकी महिमा है : परन्तु इसमें यशोदा-महात्म्यकी अन्तर्धारा है।

●

अज्ञात पुरुषसे

(गीत)

तुम्हारी सेवामें, सुख मिले !
जन्मान्तरका पाप ताप भी–
मर्त्यलोक में झिले !
कलि-कल्मषकी, तनिक न व्यापे—
भव-बन्धन द्रुत ढिले !
कल्याणी वाणी समुदय से—
इन्द्रासन तक हिले !
'कविपुष्कर' तप-त्याग सिद्ध हो–
भाग्य-कमल प्रिय खिले !

दोहा—

सत्य-सनातन ब्रह्मका, जब होता है बोध।
मन-मन्दिरमें तत्त्वका, प्रकटित होता शोध ॥
जीवन हो जाता अहो, भूरि भोगसे भुक्त।
मिलती शाश्वत शान्ति है, मानव होता मुक्त ॥

—जगन्नारायणदेव शर्मा
'कविपुष्कर' शास्त्री

●

पुत्र और शिष्यके कर्तव्य

पुत्रैश्च पूजितस्तातः शिष्यैश्च पूजितो गुरुः।
आज्ञया कुरुते कर्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत् ॥
न कुर्यान्नरबुद्धिं च गुरौ पितरि संततम्।
पिता माता गुरुर्भार्या शिष्यः पुत्रः सदाक्षमः।
अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया ॥

पुत्रोंको चाहिए कि वे पिताकी पूजा—आदर-सत्कार करें। इसी तरह शिष्योंको सदा गुरुकी पूजा करनी चाहिए। पुत्र और शिष्यको सेवककी भाँति पिता एवं गुरुके आज्ञानुसार सारा कार्य करना उचित है। पिता तथा गुरुमें कभी मनुष्य-बुद्धि नहीं करनी चाहिए। पिता, माता, गुरु, भार्या, शिष्य स्वयं अपना निर्वाह करनेमें असमर्थ पुत्र, अनाथ बहिन, कन्या तथा गुरुपत्नी—इन सबका सदा भरण-पोषण करना चाहिए।

[ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८४।१८–२२½]

श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतका वैज्ञानिक आधार है

डा० श्रीरामचरण महेन्द्र एम० ए०, पी०—एच० डी०

हिन्दूमनीषियोंने हमारे उत्सव, पर्व और त्यौहारोंका एक वैज्ञानिक और शास्त्रसम्मत आधार रखा है। उसमें निहित एक वैज्ञानिक उपयोगिता भी है। वे जिन तत्त्वोंको समाज तथा मनुष्यके लिए कल्याणकारी और उपयोगी समझते थे, उन्हें धर्मका रूप दे देते थे, जिससे जन-साधारण उन्हें सहर्ष अपना ले और धार्मिक जीवनका एक अंग होनेके कारण वे दीर्घकाल तक चलते रहें। अनजाने ही भोली भावुक जनता इन धर्म-कर्मोंको अपनाकर उनसे आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक लाभ उठाती रही है।

जन्म क्यों होता है? जीव कर्म-बन्धनमें बँधा हुआ है। शुभ कर्मोंके फलस्वरूप अच्छी और समुन्नत योनियोंमें जन्म होता है, आसुरी कर्मोंके फलस्वरूप निन्दित योनियोंमें जन्म मिलता है। शुभ-अशुभ कर्म-बन्धनसे बँधकर जीवको जन्म लेना पड़ता है। वह स्वयं अपने कर्मोंके फलस्वरूप शरीर प्राप्त करनेमें दिव्य शक्तियोंके निर्णयपर टिका हुआ है। प्रत्येक शुभ-अशुभ कर्मका कुछ-न-कुछ उपहार या सजा मिलती रहती है।

पर परमात्मा समाजमें पुण्यकी जड़ मजबूत करनेके लिए स्वेच्छासे जन्म लेता है।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यं सद्विश्वं न्यत्रिणम्
अग्निर्नो वंसते रयिम्॥ सामवेद।२२।

अर्थात् याद रखिये, परमात्मा सदैव सबके साथ न्याय करता है। वह दुष्ट दुराचारी पुरुषोंको दण्ड देता है और धर्मात्माओंको उनके कर्मानुसार सुख-सम्पत्ति बाँटता है।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नुते दानं देवस्य पृच्यते॥ सामवेद।३००।

अर्थात् वह आदि पुरुष परमपिता परमेश्वर किसीके कर्मको निष्फल नहीं रखता, न-किसी निरपराधीको दण्ड देता है। इस जन्ममें और पुनर्जन्ममें प्रत्येक मनुष्यके लिए उसने कर्मानुसार फलकी व्यवस्था कर दी है।

परमात्माके जन्मका उद्देश्य है जीवका हित करना, पापरूपी अंधकारको दूर करना तथा पुण्य-व्यवस्थाको मजबूत बनाना। श्रीकृष्णजन्मका पुण्य दिन होनेके कारण प्रत्येक भक्तको भगवान्के गुणोंपर विचार करना होता है। अनन्यचित्तसे विचार करनेपर भगवान्के सद्गुण हममें उत्पन्न होते हैं। माया-मोहका अंधकार दूर होता है, स्वार्थपूर्ण भावनाओंका क्षय होता है और दुष्टोंसे रक्षा करनेकी भावना दृढ़ होती है।

विषयोंसे भरा हुआ मन अशान्तिका कारण होता है। हम काम-भावनाओं, लालच, मोह या इन्द्रियोंकी आसक्तिमें पड़े रहते हैं, तो मन एकाग्र नहीं हो पाता। मलावरण हमें कीचड़में फँसाये रहता है। निर्विषय मन मुक्ति देनेवाला होता है। तभी हम ऊँचे-से-ऊँचे

विषयोंका चिन्तन कर सकते हैं। मुक्तिप्राप्तिके लिए, अनन्यध्यानके लिए, मनको निर्विषय रखनेके हेतु अन्न न ग्रहण करना, निराहार रहकर व्रत करना और सारे दिन उत्तमोत्तम धर्म-ग्रन्थोंका पठन-पाठन अनन्यध्यानका एक उपाय है। यदि हम आहार ले लेंगे, तो ध्यान और पूजनमें निश्चय रूपसे विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं। मन बार-बार विषय-वासनाओंकी ओर दौड़ सकता है; इसलिए धर्माचार्योंने यह व्यवस्था रखी है कि उस दिन निराहार रहकर मनको पवित्र (उत्तेजना और विषयैषणासे मुक्त) रखा जाय। विषयवासनामें लगे रहनेसे भला उच्च चिन्तन कैसे हो सकता है?

मनकी पवित्रताका एक ही उपाय है—**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**

निराहार पुरुषका विषयोंसे छुटकारा हो जाता है। जहाँ विषयोंसे छूटे कि अनन्य भक्तिकी ओर पग बढ़े **'रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते'** अर्थात् निराहारतारूप व्रत हो और इसके बाद हो भगवान्‌की बाँकी झाँकीका दर्शन।

जन्माष्टमीका व्रत भी रखा जाय, सारे दिन भगवत्-चिन्तन किया जाय, उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़े जायँ और फिर भगवान्‌का दर्शन किया जाय—ऐसा विधान होनेसे विषय तथा विषयरस छूटकर हमें आध्यात्मकी ओर बढ़ा सकते हैं। तभी हमें जन्माष्टमीका पूरा आध्यात्मिक पुण्य मिल सकता है।

पं० दीनानाथ शर्माने इस व्रतका एक वैज्ञानिक आधार बताया है जो विद्वान् लेखककी नयी खोज कहा जा सकता है। उन्होंने सिद्ध किया है कि वैज्ञानिक आधारोंपर भी जन्माष्टमी-व्रत अमृतोपम और गुणकारी है। विद्वान्-लेखकके तर्क उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत किये जाते हैं—

'पूर्णिमामें सूर्य-चन्द्रमा समान रेखामें होते हैं; अमावस्यामें दोनों समान स्थानमें होते हैं, तथा अष्टमीमें सूर्य चन्द्र समान कोणमें होते हैं। उनके आकर्षण विकर्षणका प्रभाव पृथ्वीपर भी हुआ करता है। इसी कारण सबसे अधिक ज्वार-भाटा पूर्णिमामें, सबसे कम अमावस्यामें और मध्यम ज्वार भाटा दोनों अष्टमियोंमें हुआ करता है।

जैसे सूर्य चन्द्रमाके आकर्षण-विकर्षणका प्रभाव समुद्रपर पड़ता है, वैसे ही प्राणियोंके लहूपर भी पड़ता है, क्योंकि लहू भी जलका ही भाग होता है। उक्त तिथियोंमें स्त्री-पुरुषकी वीर्य आदि धातुएँ विषम होती हैं। अतः इनमें हुई उत्तेजना हानिकारक होती है, विशेषतः वर्षा-ऋतुमें।

अतः इन तिथियोंमें ब्रह्मचर्यपूर्वक व्रत आवश्यक हुआ करता है। इसी कारण अष्टमी आदिमें पहले समयके लोग यज्ञ, व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य आदिका अनुष्ठान करते थे। अष्टमी आदिमें अनध्याय भी इसी कारण हुआ करता था। यह भाद्रपदकी कृष्णाष्टमी भी विशेष है। अतः आधी रातमें कृष्णचन्द्रोदयके अवसर तक इस व्रतका विधान रखा गया है। इस समय दर्शन, भजन, कीर्त्तन आदिमें लगे रहनेसे पहले कहे हुए दोष हट जाते हैं। इन्हीं वैज्ञानिक कारणोंसे हमें जन्माष्टमीके दिन व्रत तथा भगवान्‌का दर्शन कीर्तन आदि अवश्य करना चाहिए।

विद्वान् लेखकके अनुभवोंसे हमें लाभ उठानेके लिए श्रीकृष्णजन्माष्टमीपर व्रत रखना चाहिए।

●

ज्ञानकी गठरी

आचार्य श्री दुर्गा प्रसाद "दुर्गेश" साहित्य रत्न

(१)

ब्रह्मकी चटक बूटी, अटक गरेमें रही,
गूजरि गँवारिन गरल घूँट घूटै ना।
कहैं "दुर्गेश" देश गोकुलेशको है यह,
जीवित इहाँकी जोति जतननि जूटै ना॥

बोध भरे हाथन सों, तुम तौ बखेरो बीज,
अंकुर अलखके हमारे उर फूटै ना।
जीहा तैं न जात ऊधौ! जादौ जदुबंस मनि,
ईहाँ तै अनंद कंद नंद नंद छूटै ना॥

(२)

जौ वै मथुरा हित विहाय वृन्दावन गये,
तुम माथ रहितके आये बन सागे हो।
वै रत अधिक अंग वारो तिय माँहि भये,
तुम अंग रहितके नेह माँहि पागे हो॥

वे तो एक ठौर बैठ ग्यानको प्रकास करैं,
तुम परचारन फिरत भागे-भागे हो।
"दुर्गेश" बार-बार बंदना तिहारी करैं,
तुम उनहूँतें चार हाथ और आगे हो॥

●

भारतीय वीराङ्गनाओंके शौर्यकी अमर गाथाएँ

विदेशी आक्रमरा और भारतीय नारी

डा० जगदीशप्रसाद मिश्र

वैदिक कालमें स्त्रियोंके बाहरी आक्रमणोंके विरुद्ध युद्धोंमें भाग लेनेके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। 'ऋग्वेद'में इन्द्रसेना नामकी मुद्गलानी (मुद्गलकी पत्नी)को 'रथी' बताया गया है और उसने बैल जुते हुए रथपर सवार होकर शत्रुओंको युद्धमें जीता तथा उनकी गाएँ छीन लीं। खेल ऋषिकी पत्नी विश्पला अपने पतिके साथ युद्ध करने गयी जहाँ उसे एक टाँगसे हाथ धोना पड़ा। इतनेपर भी वह युद्धसे विरत नहीं हुई बल्कि अश्विनीकुमारोंके द्वारा लोहेकी टाँग लगा देनेपर युद्धभूमिमें शत्रुओंसे जूझ गयी। नमुचिने एक स्त्री-सेना तैयार की थी और इसी सेनासे इन्द्रको टक्कर लेनी पड़ी थी। इन्द्र इस स्त्री-सेनाके दो सैनिकोंको बंदी बनाकर ही आगे बढ़ पाया था। वृत्रासुरकी माता दनु अपने पुत्रकी रक्षाके लिए अपने प्राणों पर खेल गयी थी। असुरोंके उत्पात और उत्पीड़नके सम्मुख जब पुरुषोंकी एक न चली तब रणचण्डी दुर्गाने महिषासुर आदि राक्षसोंका संहार करके प्राणिमात्रका कल्याण किया। 'रामायण'में उल्लेख है कि असुरोंके विरुद्ध देवताओंकी ओरसे युद्ध करने गये हुए राजा दशरथके साथ कैकेयी भी युद्धभूमिमें गयी और वहाँ दशरथके रथके पहिये की कील टूट जाने पर उसने कील की जगह अपने हाथ की अंगुली लगाकर राजा की उनकी शत्रुओंसे रक्षा की। 'पद्मपुराण'के अनुसार देवासुर-संग्राममें शची अपने पति इन्द्रके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित थी और उसने असुरोंसे हारकर भागते हुए इन्द्रको वीरताका पाठ पढ़ाया। 'जैमिनि भारत'के बाइसवें अध्यायमें एक स्त्री-राज्यका जिक्र किया गया है, जिसकी शासिका प्रमिलासे पाण्डव-वीर अर्जुनको टक्कर लेनी पड़ी थी।

महाभारत-युद्धके उपरान्त पाण्डवोंद्वारा किये गये अश्वमेघ यज्ञका घोड़ा भ्रमण करता हुआ हिमालय-प्रदेशमें स्थित इस स्त्री-राज्यमें जा पहुँचा था। उसे प्रमिलाने पकड़-कर अपने अधिकारमें कर लिया। घोड़ेके संरक्षणके लिए अन्य महारथियोंके साथ वीर अर्जुन भी था। घोड़ेके पकड़े जानेपर प्रमिला और अर्जुनका घोर युद्ध हुआ। प्रमिला अत्यधिक वीरताके साथ लड़ी और अर्जुनके लिए जान बचाना मुश्किल हो गया। अर्जुनकी असमर्थता

देखकर आकाशवाणी हुई : 'अर्जुन, तुम प्रमिलाको युद्धमें परास्तकर घोड़ा वापस नहीं ले सकते। यदि तुम्हें अश्वमेधके घोड़ेकी रक्षा ही करनी है तो इससे सन्धिकर विवाह करो और सफलता प्राप्त करो।' इस प्रकार वीरताको त्याग, नीतिका सहारा लेकर अर्जुन जैसे वीरको प्रमिलासे सन्धि और विवाह करनेपर मजबूर हो जाना पड़ा।

यूनानियोंने जिन स्त्रियोंका चित्रण किया है, वे युद्धमें हारे हुए अथवा वीर-गतिको प्राप्त हुए अपने कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियोंके हथियार उठाकर युद्धमें लड़ती थीं और देशके दुश्मनोंको प्राण रहते आगे न बढ़ने देती थीं। ३२७ ई० पू० में सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया और सबसे पहले कुनार तथा रावी नदियोंके बीच स्थित राज्य अश्पायन एवं गौरी नदीकी घाटीमें स्थित गौरियोंके राज्यको जीतनेके बाद, गौरियोंके पूर्वमें स्थित अश्वकायन राज्यकी राजधानी मस्सगपर घेरा डाला। इस राज्यकी बागडोर इस समय कल्योफिस (सम्भवतः कृपी) नामक स्त्रीके हाथमें थी।

इस शासिकाने डटकर सिकन्दरका सामना किया और कभी खुले युद्धमें और कभी छापामार युद्धमें सिकन्दरकी सेनाको नाकों चने चबवा दिये। मस्सगके पहाड़ीपर स्थित किलेसे उसने पत्थरों आदिकी वर्षा करके दुश्मनको एक क्षण भी चैन न लेने दिया। यूनानी लेखक कर्टियसने लिखा है कि यह युद्ध पूरे नौ दिनतक चलता रहा जिसमें स्वयं सिकन्दरकी एक टाँग घायल हो गयी। अन्तमें सिकन्दरकी विशाल सेना और यन्त्रचालित हथियारोंके सम्मुख कृपीकी स्त्री-सेनाकी एक न चली और उसे आत्मसमर्पण कर देना पड़ा।

कौटिल्यने 'अर्थशास्त्र'में लिखा है कि रनिवासकी रक्षाके लिए विश्वस्त स्त्री-सैनिक रखी जानी चाहिए और प्रातः उठनेपर धनुर्धर स्त्रियोंद्वारा राजाका स्वागत होना चाहिए। चन्द्रगुप्त मौर्यके कालमें इसपर अमल किया जाता था—इस बातका प्रमाण हमें मेगस्थनीजके विवरणसे प्राप्त होता है। मेगस्थनीजके अनुसार सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्यका रनिवास स्त्री-सैनिकों द्वारा रक्षित था। स्ट्रैबोने भी लिखा है कि शिकारके लिए जाते हुए सम्राटके साथ रथों, अश्वों और हाथियोंपर हर प्रकारके हथियारोंसे सुसज्जित स्त्री-सैनिकोंका विशाल जत्था रहता था। इतना ही नहीं, युद्धमें जाते हुए पुरुष-सैनिकोंके साथ स्त्री-सैनिकोंके दस्ते भी पूरी मुस्तैदीसे रहते थे और युद्धमें अपने जौहर दिखाते थे।

राजपूत-कालमें स्त्रियाँ युद्धोंमें भाग लेती रही होंगी, इस बातका प्रमाण खजुराहोकी प्रतिमाओंसे भी मिलता है। खजुराहोकी मूर्तियोंमें कई स्त्रियाँ तलवार, धनुष, छुरी आदि युद्धके उपकरण लिये चित्रित की गयी हैं। एक शिल्पमें एक स्त्री तलवार चलाती दिखायी गयी है। जो सम्भवतः तलवारके दाँव-पेंचोंका अभ्यास कर रही है। इसी प्रकारके एक अन्य दृश्यमें एक स्त्री तलवारसे आक्रमण कर रही है। तलवारकी मूठ उसके हाथ में कन्धेके ऊपर नजर आ रही है और शेष फलवाला भाग उसकी पीठके पीछे छिपा है। इतिहासके पृष्ठ भी इस विषयमें कोरे नहीं हैं। ७१२ में अरबसेनापति मुहम्मद बिन कासिमने सिन्धपर आक्रमण किया और रावरके भयंकर युद्धमें उसने राजा दाहिरको मार डाला। दाहिरकी विधवा रानी बाईने युद्ध जारी रखा और रावरके किलेमें घिर जानेपर भी अपनी केवल १५,०००

सेनाके बलपर कासिमकी असंख्य सेनाके छक्के छुड़ा दिये। घोड़ेपर सवार रानी प्रत्येक मोर्चेकी देखभाल स्वयं करती थी। किलेका घेरा डालनेवाले अरबसैनिकोंपर रानी बाईने किलेकी दीवारोंके ऊपरसे तीर और पत्थरोंकी भीषण वर्षा की जिससे अनगिनत अरबसैनिक मारे गये और कासिमको धन-जनकी भारी क्षति उठानी पड़ी। इतनेपर भी जब रानी बाईने देखा कि छुटकारा असम्भव है तब दुश्मनके अपवित्र हाथोंमें पड़नेसे बचनेके लिए उसने अन्य स्त्रियोंके साथ 'जौहर' किया जिसका विस्तृत उल्लेख 'चाचनामा' नामक ग्रन्थमें किया गया है।

'राजतरंगिणी' में कल्हणने कश्मीरकी रानी दिद्दा, छुड्डा और सिल्ला नामक स्त्रियोंका जिक्र किया है जिन्होंने अपनी कुशलता और वीरताका अनेक बार परिचय दिया था।

दक्षिण भारतमें कर्नाटकके प्रशासकोंमें चालुक्य राजकुमारी अक्क देवीका नाम प्रमुख है जिसने चालुक्य-साम्राज्यके वनवासी, किसुकाडु, मासूवाडो प्रदेशोंपर लगभग पचास वर्ष (१०१० से १०६४) तक राज्य किया। अक्क देवी, दशवर्मन और भागल देवीकी पुत्री तथा कल्याणके चालुक्य-सम्राट् विक्रमादित्य पञ्चम और जयसिंह द्वितीयकी बहन थी। अनेक लेखोंके अनुसार अक्क देवीने युद्धोंमें अनेक शत्रुओंका दमन किया और विप्लवको दबानेके लिए गोकजका प्रसिद्ध घेरा डाला। उसकी वीरताके गीत आज भी उस प्रदेशमें सुने जा सकते हैं।

११७८ में मुहम्मद गोरीने अनहिलवाड़ा पाटनपर आक्रमण किया। इस समय इस राज्यका शासक बालमूलराज या मूलराज द्वितीय था। यह शासक अल्प-वयस्क था, इसलिए उसकी माँ नायकी देवी राज्यकी देखभाल करती थी। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में इस आक्रमणके समय प्रदर्शित की गयी नायकी देवीकी वीरता और साहसकी यशोगाथाका बखान किया गया है। नायकी देवीने अपने पुत्र मूलराजको गोदमें बिठाकर, घोड़ेपर सवार हो शत्रुका सामना किया और गादराघाट नामक पहाड़ी दर्रेके पास युद्धमें उसे हराकर वापस लौटनेपर मजबूर कर दिया। गादराघाटके विषयमें कोई पता नहीं चलता। सम्भवतः यह दर्रा आबू पर्वतकी तलहटीमें उत्तरकी ओर रहा होगा। मुस्लिम इतिहासकारोंने इस लड़ाई और मुहम्मदगोरीकी हारका उल्लेख किया है।

राजस्थानकी वीरांगनाओंमें कर्मदेवी और रानी कर्णवतीका नाम आज भी अत्यन्त सम्मानके साथ लिया जाता है। पाटनकी राजकुमारी कर्मदेवी चित्तौड़के महाराणा समरसिंहकी वीर पत्नी थी। ११९२ में समरसिंह तराइनकी दूसरी लड़ाईमें अपने शत्रु मुइजुद्दीन मुहम्मदके साथ युद्ध करते ही वीरगतिको प्राप्त हुए। इस समय उनका पुत्र करनसिंह अल्प-वयस्क था, अतः रानी कर्मदेवीने राज्य-रक्षा और शासनका कार्य बड़ी साहसिकता और कुशलतासे किया। ऐसे समयमें जब कि शत्रु अवसरकी ताकमें बैठे थे, रानीने सेनाकी स्वयं निगरानी की और उसे अधिक मजबूत बनानेका प्रयत्न किया। इसी कार्यमें अभी रानी उलझी हुई थी कि शक्ति-परीक्षाका समय आ उपस्थित हुआ। मुस्लिम सूबेदार कुतुबुद्दीनने

चित्तौड़पर आक्रमण कर दिया। रानी अपनी सेना लेकर शत्रुके मुकाबलेके लिए आगे बढ़ी। अम्बरके निकट दोनों सेनाएँ टकरा गयीं। रानी घोड़ेपर सवार हाथमें तलवार लिये बिजलीकी तरह झपटकर शत्रुओंपर टूट पड़ी। जिधर रानी निकल जाती, शत्रुओंके जत्थे-के-जत्थे साफ-कर देती। इस घमासान लड़ाईमें कुतबुद्दीनको रानीने बुरी तरह घायल कर दिया और वह सेनासमेत मैदान छोड़कर भाग गया।

रानी कर्णवती मेवाड़के राजा विक्रमाजीतकी माँ तथा राणा साँगाकी पत्नी थी। विक्रमाजीत एक योग्य शासक नहीं था, अतः रानीने शासनको सुव्यवस्थित रूपसे चलानेका प्रयत्न किया। लेकिन इसी बीच गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने १५३४-३५ में चित्तौड़को घेर लिया और मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। राजपूतोंने घमासान युद्ध किया। रानीने हुमायूँको राखी भेजकर सहायता माँगी, लेकिन हुमायूँ समयपर सहायता न दे सका। फिर भी रानीने राजपूतों तथा राजपूतानियोंकी एक विशाल सेना तैयार की, और दुश्मनपर टूट पड़ी। अन्तमें जब रानीने अपनी विजयके लक्षण न देखे तब अन्य राजपूतानियोंके साथ अपनेको जौहरकी आगमें भस्म कर दिया।

फरिश्ताने लिखा है कि बुद्धिमान् व्यक्ति रजियामें कोई कमी नहीं पाते थे। उसमें निर्भयता तथा बहादुरीके साथ ही शासनको संभालनेकी पूरी योग्यता थी। उसका शासक बनना शम्सी सरदारोंको पसंद न आया और वे विद्रोहमें उठ खड़े हुए। अकेली रजियाने उन सबको मार भगाया। इसके बाद उसने मलिक रवानीको हराकर आत्मसमर्पण करनेको मजबूर कर दिया। १२४० में बलबनने विद्रोह किया और रजियाको कैथलके भयंकर युद्धमें हराकर लड़ाईके मैदानसे भागनेपर मजबूर कर दिया। भागते हुए उसे कुछ जमींदारोंने पकड़ लिया और मार डाला।

गोंडवाना (मध्यप्रदेशका उत्तरी भाग)की शासिका रानी दुर्गावती बहादुरी और योग्यतामें अपना सानी नहीं रखती थी। उसने मालवाके शासक बाजबहादुर और मुगल-शासक अकबरकी सेनाओंसे टक्कर ली और कई बार उन्हें हराया। अबुलफजलने 'अकबरनामा' में लिखा है—'वह बहादुरी और योग्यतामें किसी भी प्रकार कम न थी और उसने अपनी दूरदर्शितासे अनेक महान् कार्य किये। उसने बाजबहादुर और मियांओंसे कई लड़ाइयाँ लड़ीं जिनमें वह हमेशा विजयी रही। इन लड़ाइयोंमें उसके पास २० हजार घुड़सवार और एक हजार हाथियोंकी प्रसिद्ध सेना थी। इन राजाओंके खजानोंपर उसने अधिकार कर लिया। वह बहुत अच्छी निशानेबाज थी और जंगली जानवरोंका शिकार करना उसके लिए बायें हाथका खेल था।' १५६४ में अकबरकी आज्ञासे कड़ाके सूबेदार आसफ खाँ प्रथमने उसके राज्यपर आक्रमण किया। रानी मैदानमें आई और भयंकर युद्ध करके उसने मुगल-सेनाओंको दो बार परास्त किया। लेकिन विशाल मुगल-सेनाओंसे पार पाना आसान नहीं था। गढ़ा और मण्डलाके बीच स्थित एक स्थानपर उसे तीसरी लड़ाई लड़नी पड़ी जिसमें दो तीर लगनेसे वह बुरी तरह घायल हो गयी। दुश्मनोंके हाथमें पड़नेके बजाय उसने छुरा मारकर अपना अन्त कर दिया।

अहमदनगरके शासक हुसैन निजामशाहकी बेटी और बीजापुरके शासक अली आदिलशाहकी बेगम चाँदबीबी हरमके पर्देमें रहनेवाली स्त्री न होकर पतिकी शासनके मामलोंकी सलाहकार थी। पतिके साथ घोड़ेपर सवार होकर सेनाकी कवायदका निरीक्षण करना और खुली लड़ाइयोंमें सक्रिय भाग लेना उसका प्रिय शौक था। १५८० में अपने पतिके धोखेसे मार डाले जानेपर वह अल्प-वयस्क शासक आदिलशाहकी संरक्षिका बन शासन संभालने लगी। इस समय अपने ही बनाये कई मन्त्रियोंके कुचक्रोंको उसने विफल किया। अहमदनगरके राजाकी मृत्युके बाद वहाँ मन्झूने चाँदबीबीकी इच्छाके विरुद्ध अहमदशाहको गद्दीपर बैठा दिया। चाँदबीबीकी नाराजगीके भयसे उनने मुगल राजकुमार मुरादसे सहायता माँगी। मुरादके मन्सूबे अहमदनगरको हड़पनेके देखकर मन्झू मियाँने चाँदबीबीसे सहायताकी प्रार्थना की। वृद्धावस्था और कमजोरी होते हुए भी चाँदबीबीने अहमदनगरकी रक्षा की। कई महीने तक युद्ध होनेपर भी विजयकी आशा न देखकर मुरादने घेरा उठा लिया। इस लड़ाईके दौरान चाँदबीबीने काफी बहादुरी और निर्भीकताका परिचय दिया। एक दिन शत्रुओंने बारूद बिछाकर किलेकी एक ओरकी दीवार उड़ा दी। यह समाचार पाकर चाँदबीबी कुछ सहायकोंको लेकर उधर दौड़ी और अत्यन्त सावधानी तथा बहादुरीसे रातों-रात पूरी दीवार फिर खड़ी करवा दी। मुराद उसकी जवाँमर्दी और अक्लमंदीसे बड़ा प्रभावित हुआ और घेरा उठा लिया। इस वीर स्त्रीको १५९९ में कुछ सरदारोंने देशद्रोहकर मरवा डाला।

छत्रपति शिवाजीके पुत्र राजारामकी पत्नी ताराबाईकी वीरता और महत्त्वाकांक्षाके कारण ही औरंगजेब दक्षिणमें आगे न बढ़ सका था। अपने पतिकी मृत्युके बाद लगातार सात वर्ष तक उसने मुगलोंसे टक्कर ली और उन्हें आगे बढ़नेसे रोका। सेनाका नेतृत्व करती, एक किलेसे दूसरे किलेमें आगे बढ़ती वह लगातार संघर्ष करती रही जिससे मुगल सेनाओंका दक्षिणमें ठहरना दूभर हो गया। इसके कुछ समय पश्चात् मल्हारराव होल्करके बेटे खण्डू जीकी पत्नी अहिल्याबाईने अपनी वीरता और योग्यतासे लोगोंको चकित कर दिया।

१०० वर्षसे ऊपर हो गये लेकिन झाँसीकी रानीकी याद आज भी हर भारतीयके मनमें ताजी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब-जब भारतपर विदेशी आक्रमणोंका संकट आया, यहाँकी नारी भी उठ खड़ी हुई और शत्रुओंको पीछे हटाकर ही दम लिया, भले ही इस कार्यमें उसके प्राण चले गये हों।

श्रीकृष्णवल्लभा गोपकिशोरियोंके गीतोंसे
सोहल सहस्र रागोंकी उत्पत्ति

भारतीय संगीत

आचार्यप्रवर श्रीसीताराम चतुर्वेदी

★

भारतीय संगीतका मुख्य लक्ष्य था नाद-ब्रह्मकी साधनाके द्वारा मोक्ष-प्राप्ति, और उसके लिए मार्गी संगीत-साधनाका विधान था। लगभग तीस वर्ष पूर्व हृषीकेशसे ऊपर एक साधु रहते थे जिन्होंने पाँच-पाँच छः-छः वर्षोंमें सरगमके एक-एक स्वरको सिद्ध किया था और उसके प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। उनमें अद्भुत कौशल यह था कि निरन्तर महीनोंतक बात-चीत भी एक ही स्वरमें करते थे।

कालकी गति विचित्र होती है। राज-सभाओंमें पहुँचकर संगीतने मार्गी रूप छोड़कर देशी रूप धारण किया और विलासके अनेक प्रकारोंमें संगीत भी एक प्रकार बन गया तथा ईश्वरके बदले मनुष्यको रिझाना उसका लक्ष्य बन गया। सिनेमावालोंके हाथमें पड़कर काव्य और संगीत दोनोंकी निर्मम हत्या हुई और हम लोग जान-बूझकर मक्खी निगलनेको विवश हो रहे हैं—

अवाजे खल्कको नक्कार ए खुदा समझो।

रेडियोवालोंने और नीचे उतरकर संगीतको व्यावसायिक विज्ञापनका साधन बनाया और संगीतका प्रयोग टिनोपाल, बोर्नविटा आदिके प्रचारके लिए होने लगा। 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै'के अनुसार संसारकी रुचिके साथ सब बहे चले जा रहे हैं। आज जिसे हमारे संगीताचार्य लोग भी शास्त्रीय संगीत कहते हैं वह पूर्णतः अशास्त्रीय है और संगीतज्ञ भी महाकवि कालिदासके शब्दोंमें पैसा लेकर संगीत बेचनेवाले बनिए हैं—

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

संगीत-दर्पणमें संगीतकी यह परिभाषा की गयी है—

गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते।

'संगीत या गाना, वाद्य और नर्तन तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं।' कुछ विद्वान् इनमें-से प्रत्येकको संगीत कहते हैं, किन्तु वास्तवमें तीनोंके समाहारको ही संगीत कहते हैं। इनमें-से वाद्यके सहारे नृत्य चलता है और गीतके सहारे वाद्य चलता है, अतः, इन तीनोंमें गीत ही मुख्य है।

गीतवाद्यनर्तनसमाहारः संगीतम्॥ ११५॥

मार्गी और देशी : संगीतदर्पणकारने संगीत-शास्त्रको दो भागोंमें विभक्त किया है—मार्गी और देशी। जिस संगीत का प्रदर्शन ब्रह्माके निर्देशसे भरतने महादेवजीके सामने प्रदर्शित किया था और जो मोक्ष देनेवाला है वह मार्गी संगीत है और विभिन्न देशोंमें विभिन्न रीतियोंके अनुसार लोकरंजनके लिए जिस संगीतकी योजना की जाती है, उसे देशी कहते हैं।

हमारे यहाँ सामवेदके उद्गाता लोग वैदिक यज्ञोंके समय जो साम गाया करते थे उसके उपवेदको गन्धर्ववेद कहते हैं। उसमें संगीत-शास्त्रका पूरा विवरण दिया हुआ है। अन्य वेदोंमें भी नृत और गीतकी योजनाका (नृत्ताक गीताय) प्रमाण मिलता है और वह परिपाटी आजतक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। रामायण, महाभारत तथा पुराणोंमें विस्तारसे स्थान-स्थानपर गीत, नृत्य, नाटक, शैलूष, नर्तक, नट, कुशीलव, मागध, नान्दिवाद, वन्दी, गायक, सौख्यसायिक, वैतालिक, कथक, ग्रन्थिक, गाथी और सूत आदि संगीत-व्यवसायियोंका प्रचुर उल्लेख मिलता है। देवताओंकी सभाओंमें भी गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा देवताओंके मनोरंजनके लिए नृत्य, गीत और नाटयका आयोजन करनेके उल्लेख भी मिलते हैं।

भरतने अपने नाटयशास्त्रमें संगीतकी स्वर-विधिका निम्नांकित क्रम दिया है—

(अ) स्वरसंज्ञाएँ; (आ) वादी, संवादी, अनुवादी, विवादीके रूपमें चतुर्विध, स्वर या उनके चतुर्विध सम्बन्ध; (इ) वादी, संवादीका लक्षण; (ई) मध्यमग्राममें पंचम-ऋषभ' तथा षड्जग्राममें षड्ज-पंचमके पारस्परिक संवादको प्रतिपादित करनेवाला श्लोक; (उ) विवादी एवं अनुवादीका लक्षण कुछ उदाहरण; (ऊ) वादी, संवादी, अनुवादी एवं विवादी संज्ञाओंकी अनिवार्यता; (ए) षड्जग्रामीण स्वरोंकी स्थापनाका ज्ञान करानेवाआ श्लोक, जिसमें षड्जग्राममें श्रुतिनिदर्शन बताया गया है और जिसके रहस्यसे परिचित होनेपर मध्यम-ग्राम स्थित स्वरोंका भी ज्ञान हो जाता है। (ऐ) षड्जग्राम एवं मध्यमग्रामसे परिचित व्यक्तिके लिए एक 'स्थान'में श्रुतिसंख्या एवं श्रुतिपरिमाणोंकी प्रासिका उपाय 'चतुःसारणा।' (ओ) दोनों ग्रामोंमें स्वरोंकी संख्याका स्मरण रखनेके लिए संग्रह-श्लोक, जिनमें 'चतुः-सारणा'का निष्कर्ष पद्यबद्ध है।

स्वर : षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद नामक सातों स्वर सा रे गा मा पा धा नि कहलाते हैं। इनमें-सें षड्ष और पंचम तो स्थिर रहते हैं अर्थात् उनमें कोई रूपपरिवर्तन नहीं होता किन्तु रे गा धा नि कोमल भी होते हैं और मध्यम तीव्र भी होता है। सात स्वरोंके बीचमें २२ श्रुतियाँ होती हैं। श्रुतियोंके सम्बन्धमें नाटय-शास्त्रमें एक श्लोक है—

'तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च।
द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम् ॥'

'षड्जग्राममें श्रुतियोंकी स्थिति क्रमशः तीन, दो, चार, चार, तीन, दो, चार है।'

दत्ततिलने भी किसी भी ध्वनिको षड्ज मानकर उसके पश्चात् ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद और उसके पश्चात् षड्जकी श्रुतियोंकी संख्याका निर्देश किया जिनमें-से प्रत्येकका क्रम इस प्रकार होगा—

गृहीत स रे ग म प ध नि स
१,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१,२२

कुछ आचार्योंके मतानुसार षड्जमें ४, ऋषभमें ३, गान्धारमें २, मध्यममें ४, पंचममें ४, धैवतमें २ और निषादमें २, इस प्रकार २२ श्रुतियाँ होती हैं। किन्तु यह क्रम नाट्यशास्त्रके क्रमसे भिन्न है और आजकल श्रुतियोंके सम्बन्धमें इतना विवाद खड़ा हुआ है कि इसके लिए शोध आवश्यक है। वास्तवमें श्रुतियोंका प्रयोग मार्गी संगीतमें ही होता था किन्तु मार्गी संगीतके पूर्णतता लुप्त हो जानेके कारण श्रुतियोंका प्रयोजन भी निष्फल हो गया।

गीत काव्याश्रितकंठरागप्रयोजनीयं गीतम् ॥ ११६ ॥

'काव्याश्रित ही राग कण्ठसे गाया जाता गीत।'

संगीतमें गीत प्रधान है और यह गीत किसी कविताके आश्रयपर किसी रागमें बाँधकर गाया जाता है। संगीतदर्पणकारने रागकी परिभाषा इस प्रकार समझायी है—

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥
यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्त्तिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ॥
यस्य श्रवणमात्रेण रज्यन्ते सकलः प्रजाः।
सर्वानुरंजनाद्धेतोस्तेन राग इति स्मृतिः ॥

(संगीतदर्पण ८५)

'स्वर और वर्ण से विभूषित जिस ध्वनिविशेषसे लोगोंके चित्तका अनुरंजन हो उसे राग कहते हैं अथवा जिससे साधारण मनुष्यके चित्तमें भी अनुरागका संचार हो उसे राग कहते हैं।' दार्शनिक दृष्टिसे पातंजल योग-सूत्रके 'सुखानुशयी रागः' के अनुसार भी तृष्णा उत्पन्न करनेवाला साधन ही राग कहलाता है, तात्पर्य यह है कि जब कोई इस प्रकार गाने लगे कि सब लोग अपना-अपना काम-काज छोड़कर सुख-दुःख भूलकर दत्तचित्त होकर उसमें तन्मय हो जाय, उस गायनको राग कहते हैं।

रागकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें संगीत-दामोदरने लिखा है कि 'भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष सोलह सहस्र गोपियोंने एक-एक करके जिन रागोंमें गाये, उन्हींसे सोलह सहस्र रागोंकी उत्पत्ति हुई जिनमेंसे छत्तीस राग प्रसिद्ध हैं।

वर्ण : ऊपर बताया गया है कि 'स्वर और वर्णसे विभूषित ध्वनिको ही राग कहते हैं।' शुद्ध, कोमल और तीव्र स्वर तथा श्रुयियोंमें-से लिए हुए निश्चित स्वर-समूहको लेकर यथाविधि गानेको वर्ण कहते हैं। ये वर्ण चार होते हैं—स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

स्थायी : षड़ज आदि स्वरोंमें से जो स्वर रह-रहकर थोड़ी-थोड़ी देरपर किसी रागमें उच्चरित होता है अथवा जिस स्वरमें राग कुछ देर तक ठहरता है, उस स्वरसे युक्त गीतके प्रारम्भिक भागको स्थायी कहते हैं।

आरोही : क्रमशः स्वरोंके ऊपर चढ़ाने अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषादके क्रमसे स्वरोंको ऊपर चढ़ाकर गानेको आरोही कहते हैं।

अवरोही : क्रमशः निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ और षड्जके अनुसार ऊपरसे नीचे स्वर लानेको अवरोही कहते हैं।

संचारी : स्थायी, आरोही और अवरोहीको मिलाकर स्वर-संचार करनेको संचारी कहते हैं।

ग्रह, अंश और न्यास : राग आदिमें प्रयुक्त होनेवाले स्वरोंके प्रकार-भेदसे उनके तीन नाम हैं—ग्रह, न्यास और अंश। जो स्वर गीतके प्रारम्भमें ही स्थापित हो जाता है उसे ग्रह स्वर कहते हैं। जिस स्वरमें गीतकी समाप्ति होती है उसे न्यास कहते हैं और जो स्वर किसी रागमें अधिक प्रयुक्त होता है अर्थात् जिस स्वरके बिना रागकी मूर्ति स्पष्ट नहीं होती उसे अंश या जाम कहते हैं। इसे आजकल वादी स्वर कहते हैं।

अंग : रागोंके चार अंग हैं—रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग। रागका छाया मात्र अनुकरण करनेको रागांग कहते हैं। भाषाका छाया मात्र आश्रय लेनेको भाषांग कहते हैं। राग आदि गानेमें उत्साह दिखानेको क्रियांग कहते हैं और रागांग, भाषांग, क्रियांग तीनोंका सामान्य अनुकरण करनेको उपांग कहते हैं।

काण्डारला : किसी रागको गाते समय जब अत्यन्त उच्च स्वरका प्रयोग किया जाय, शीघ्रता और कौशलसे अनेक प्रकारकी गमक या स्वर-कंपन प्रदर्शित करके रागको विभूषित किया जाय, उसे काण्डारला कहते हैं।

थाट : स्वरों की, जिस विशिष्ट रचना द्वारा विभिन्न राग, रागिनियोंकी उत्पत्तिकी जा सके उसे थाट या ठाट कहते हैं। इसी थाटको दक्षिणके संगीतज्ञ मेल कहते हैं। इसका क्रम यह बताया गया है कि नाद ब्रह्म (अनाहत नाद) से स्वर, स्वरसे सप्तक, सप्तकसे थाट और थाटसे राग-रागिनियोंकी उत्पत्ति हुई है।

थाटके प्रकार : थाटोंकी संख्याके सम्बन्धमें भारतीय ग्रन्थकारोंमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोग छत्तीस और कुछ बहत्तर थाट मानते हैं किन्तु भातखंडेजीने उत्तर भारतीय संगीतको दस ही थाटोंमें बाँध दिया है—बिलावल, कल्याण, खमाच, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोडी। दक्षिण भारतके विद्वान् पं० वेंकट-मुखी जीने चतुर्दंडी प्रकाशिकामें ७२ मेलों (थाटों) का अत्यन्त तर्क-संगत, शास्त्र-संगत और गणित-संगत वर्णन किया है!

थाटकी विशेषताएँ : आधुनिक सिद्धान्तोंके अनुसार थाटोंमें निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए—

१. थाटमें सात स्वरोंसे कम नहीं होना चाहिए।

२. सातों स्वर सा रे ग म प ध नि के क्रम से होने चाहिए।

३. थाटमें केवल आरोही स्वर ही दिये जाते हैं, अवरोही नहीं।

४. थाट स्वयं गाया-बजाया नहीं जाता वरन् इससे उत्पन्न होनेवाले राग ही गाए बजाए जाते हैं। यह तो केवल रागका उत्पादक सूत्र है।
५. थाटके स्वरोंकी रचना ऐसी होनी चाहिए कि उससे राग-रागिनियोंकी उत्पत्ति हो सके।
६. थाट स्वयं आवश्यक रूपसे रंजक नहीं होता।
७. थाटका नाम उस थाटसे उत्पन्न उसके आश्रय रागके अनुसार होना चाहिए।
८. थाटमें वादी स्वरका होना आवश्यक नहीं है।

आश्रय राग : ऊपर बताया गया है कि थाटका नाम उससे उत्पन्न आश्रय रागके नामपर होना चाहिए, किन्तु थाट और राग कभी एक नहीं होते जैसे खमाच-थाट खमाच रागसे भिन्न है।

पूर्व राग और उत्तर राग : जो राग दिनके पहले भाग (पूर्वाङ्ग) अर्थात् १२ बजे दिनसे १२ बजे रात तक गाए जाते हैं वे पूर्व राग कहलाते हैं और जो दिन-रातके दूसरे भाग (उत्तराङ्ग, १२ बजे रात्रिसे १२ बजे दिन तक) में गाए जाते हैं, वे उत्तर राग कहलाते हैं।

श्रुति : जिस नादको हम स्पष्ट रूपसे सुन सकें और किन्हीं दो स्वरोंके बीच अन्तर बता सकें उसे श्रुति कहते हैं। ऐसी २२ श्रुतियाँ मानी गयी हैं।

अल्पत्व, बहुत्व : किसी रागमें जब किसी स्वरका अधिक प्रयोग होता है तब उसका बहुत्व कहलाता है और कम प्रयोग होता है तब उसका वह अल्पत्व कहलाता है।

तिरोभाव और आविर्भाव : गाते या बजाते समय थोड़ी देरके लिए मूल रागको छिपा देनेकी क्रियाको तिरोभाव और पुनः मूल रागपर आ जानेको आविर्भाव कहते हैं।

वक्र स्वर : स्वरोंका आरोह-अवरोह करते समय जब किसी स्वर तक जाकर फिर पीछेके स्वरका प्रयोग करके मूल स्वरको छोड़ते हुए उसके आगे आनेवाले स्वरका प्रयोग करते हैं तो मूल स्वर वक्र कहलाता है जैसे ग म प ध नी ध सां। इस प्रकार निषाद वक्र स्वर हुआ। इसी प्रकार अवरोहमें सां नी ध प म ग म रे सा में गांधार वक्र स्वर हुआ।

कण या स्पर्श स्वर : गायन अथवा वादनमें सौन्दर्य बढ़ानेके लिए कभी एक स्वरका प्रयोग करते समय उसके साथ किसी अन्य स्वरको स्पर्श करते हुए दोनोंका सम्मिलित प्रयोग किया जाता है जिसमें मूल स्वरकी अपेक्षा दूसरा स्वर नाममात्रको साथमें ध्वनित होता है। वहीं कण या स्पर्श स्वर कहलाता है जैसे नी/धा या प/ग में निषाद तथा पंचम कण या स्पर्श स्वर है।

मींड़ या मूर्च्छना : एक स्वरसे दूसरे दूरके स्वर तक बीचके स्वरोंको लपेटती हुई अखण्ड सरकती हुई स्वर-ध्वनिको मींड़ या मूर्च्छना कहते हैं जैसे प ग या प रे। इसमें ग और रे का उच्चारण इस रीतिसे करेंगे कि प की स्वर ध्वनि बिना टूटे हुए ग और रे पर आकर रुक जाय।

गमक : 'स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्त-सुखावहः।' किसी स्वरको या किन्हीं स्वरोंके इस प्रकार कँपाकर गानेको गमक कहते हैं जो श्रोताओंको अच्छा लगे। इसका प्रयोग ध्रुवपद तथा धमारकी गायकीमें विशेष किया जाता है, खयाल-गायकीमें कम।

ठुमरी : यह केवल भाव-प्रधान शृङ्गारपरक गीत-शैली है जिसमें रागोंकी शुद्धतापर इतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना उसे श्रुति-मधुर बनानेपर। बरवा, झिंझौटी, भैरवी, खमाच, पीलू तथा काफी जैसे क्षुद्र प्रकृतिके रागोंमें तीन ताल, गत और दीपचंदी तालके साथ यह गायी जाती है। ठुमरियाँ तीन शैलियोंमें गायी जाती हैं—बनारसी, लखनवी और पंजाबी।

टप्पा : यह शृङ्गार-प्रधान पंजाबी गीत-शैली है जो टप्पा तालमें या तीन तालमें ही गायी जाती है। इसके प्रवर्तक गुलाम नबी शौरी माने जाते हैं। इसमें शब्द बहुत कम होते हैं और केवल छोटे-छोटे आलंकारिक स्वर-समूहका प्रयोग होता है। इसकी गति चपल और प्रकृति क्षुद्र होती है। भैरवी पीलू, बरवा, खमाच, काफी, झिंझौटी, आदि क्षुद्र प्रकृतिके रागोंमें यह गाया जाता है। इसमें छोटे-छोटे वक्रगतिक तान-पलटोंके साथ कण, मुर्की, खटके और फिरत इत्यादिका प्रयोग होता है।

तराना : ता ना दिर ओ दानी दीम दे रे तूम त दारे—आदि बोलोंके प्रयोगसे तालबद्ध गायन तराना कहलाता है जिसमें स र ग म के स्वर और तबलेके बोल भी होते हैं। इसमें स्वर तथा लयको प्रधानता रहती है। प्रायः खयाल गायनके पश्चात् यह द्रुत लयमें गाया जाता है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार इस पद्धतिका प्रवर्तन ईरानके अमीर खुसरोने किया था।

संधि-प्रकाशक राग : जिन रागोंमें रे और ध कोमल लगते हैं वे संधि-प्रकाशक राग कहलाते हैं क्योंकि उनका गायन सूर्योदय या सूर्यास्तके समय होता है।

गायकोंके गुण

संगीत-रत्नाकरमें गायकोंके २२ गुण और २५ अवगुणोंका उल्लेख है। मुख्य गुण निम्नांकित हैं—

१. मधुर कण्ठ (गमक, कण और मींड लेनेके योग्य मधुर और सुरीला कण्ठ तथा बिना अभ्यासके गानेकी क्षमता); २. शुद्ध उच्चारण; ३. स्वर और श्रुतिका ज्ञान तथा उन्हें ठीक स्थानपर प्रयोग करनेकी क्षमता; ४. लय और तालका ज्ञान अर्थात् लयदारी और तालोंके ढानके साथ गीतके बीच-बीच सुन्दर मुखड़े मिलाने और मृदंग या तबलेके साथ लड़न्त करनेकी क्षमता; ५. अधिक-से-अधिक रागोंका ज्ञान तथा तिरोभाव-आविर्भावका कौशल; ६. समुचित अभ्यास; ७. स्वर, लय और भावका उचित समन्वय; ८. सुन्दर तान-अलापकी रचना करने और पुनरावृत्ति दोषसे बचकर नयी रचनाके साथ गायन करनेकी क्षमता; ९. बिना थके हुए एकाग्र-चित्त होकर देर तक गाना या बजाना; १०. श्रोताओंको मुग्धकर देना; ११. नीचे-नीचेसे उठाकर ऊँचे-से-ऊँचे स्वर तक पहुँचानेकी शक्ति; १२. आत्म-विश्वास; १३. गायकी; १४. समय, अवसर तथा श्रोताओंकी सुविधा और प्रकृतिका ध्यान रखकर गाना।

गायकोंके अवगुण :

कर्कश कण्ठ, बेसुरा गायन; अशुद्ध उच्चारण; बिना ताल और लयका गाना; अभ्यासकी कमी; पुनरावृत्ति; मुद्रादोष (वेढंगा मुँह बनाने या वेढंगे वैठनेके ढंगको कुढ़ंग करके गाना-बजाना); अव्यवस्थित गायन; आत्म-विश्वासकी कमी; समय श्रोता और अवसरका ध्यान न रखकर गाना; आवश्यकतासे अधिक तैयारी दिखाना; स्वर, लय, और भावके समन्वयकी कमी तथा नीरसता; ये गायकके अवगुण हैं। प्रत्येक गायक और वादकको इन दोषोंसे बचकर संगीतका अभ्यास और प्रदर्शन करना चाहिए। आजकल, तुलसी, सूर, मीराका भजन गाते हुए बीचमें सरगम अलापना भी अवगुण है। इससे भजनका भाव नष्ट हो जाता है।

आधुनिक आलाप

पहले ध्रुव-पदकी गायन-पद्धतिमें आलापका अवकाश नहीं होता था किन्तु जबसे खयाल और तराने गाये जाने लगे तबसे आलापके लिए अधिक अवसर प्राप्त होने लगे। अधिकांश गायक खयालके प्रारम्भमें थोड़ा आलाप करते हैं, क्योंकि वे गीतके बीचमें ही विस्तृत आलाप करना अधिक संगत समझते हैं। यह आलाप आकार अर्थात् नोम-तोमके ढंगसे या गीतके शब्दोंको लेकर किया जाता है। यह आकार आलाप (नोम-तोम वाले आलाप) चार अंगोंमें विभक्त होते हैं स्थायी; अन्तरा; संचारी; और आभोग।

तान और बोलतान : द्रुत गतिमें स्वर-समूहोंको आकारमें बोलनेको तान और गीतके शब्दोंको लेकर तान बोलनेको बोलतान कहते हैं। तानके निम्नांकित १२ प्रकार हैं— **१. सपाट तान :** जिसमें क्रमानुसार रागके स्वर लगते हैं। सा रे ग म प ध नि स; **२. शुद्ध तान :** जिसमें किसी रागके आरोह अवरोहके अनुसार तान बोलते हैं; **३. कूट तान :** जिसमें स्वर क्रमके बदले टेढ़ी तान ली जाती है—जैसे-साग रेम गप मप रेम गप; **४. मिश्र तान :** जिसमें शुद्ध और कूट तानोंका मिश्रण होता है, जैसे सारे गप धप गप गम गरे रेग रेस; **५. आलंकारिक तान :** जिसमें किसीमें अलंकारका प्रयोग होता है, जैसे सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनि, धनिसं; **६. छूटकी तान :** जिसमें झटकेके साथ कोई तान ऊपरसे नीचेको आती है जैसे गं, गंरंसं, निध, पम, गरेसा; **७. दानेदार तान :** जिसमें कणका प्रयोग होता है; **८. बराबरकी तानें :** जो गीतके बराबर लयमें ली जाती हैं; **९. गमककी तानें :** जिनमें गमकका प्रयोग होता है; **१०. जमजमा :** यह भी तारवाद्य, बाँसुरी, क्लेअरोनेटपर बजायी जानेवाली गमकका ही प्रकार है। सितारमें दो स्वरोंको क्रमशः वेगसे बजानेको जमजमा कहते हैं। यह दो उँगलियोंसे उत्पन्न होता है। इसमें एक उँगली परदेपर और दूसरी चलती रहती है। **११. लड़न्तकी तानें :** जिनकी लय बार-बार बदलती रहती है; **१२. फिरतकी तान :** जो सीमित स्वर-समुदायके भीतर ही घूमती रहती है, जैसे, गमपम, गमगम गमगप गमपम, पमपम, गमपम, गममम, गममप, पमगम, गरेसा; **१३. जबड़ेकी तान :** जो जबड़ेकी सहायतासे अलापी जाती है।

ध्रुवपद : ध्रुवपदका अर्थ है दृढ़ या गम्भीर चरण। अतः, देवताओंकी स्तुति और प्रार्थना इत्यादि मन्द लयात्मक गेय पद ध्रुवपदमें गाये जाते हैं। इनमें तीनोंके प्रयोगके बदले द्विगुण, त्रिगुण और चौगुण बोलतान तथा गमक इत्यादिका प्रयोग होता है और चौताल या शूल ताल आदि तालोंका उपयोग होता है। इनमेंसे किसीमें चार अंग-स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग होते हैं, किसीमें केवल स्थायी और अन्तरा।

बड़ा ख्याल या बिलंबित ख्याल : बिलंबित लयमें विस्तारके साथ गाये जानेवाले गीतको बड़ा या बिलंबित ख्याल कहते हैं। जिसमें धीमा त्रिताल, तेवरा (तीव्रा) झूमरा, अँड़ा चौताल, तथा एकताल आदि तालोंका प्रयोग होता है। इसे तान-पल्टों-द्वारा अलंकृत करके गाया जाता है। मुगल बादशाह रंगीलेके दरबारी तथा तानसेनके वंशज सदारंग तथा रदारंगबन्धु ही बड़े खयालके जन्मदाता माने जाते हैं। पहले खयालके अन्तर्गत आध्यात्मिक गीत गाये जाते थे किन्तु दरबारी गायकोंने उसमें शृङ्गारप्रधान गीत गाना प्रारंभ कर दिया।

छोटा खयाल : खिजली बादशाहोंके दरबारी अमीर खुसरोने तीव्रगति वाले बहुत से तानपल्टोंसे भरे छोटे खयालका प्रचार किया, जिसमें त्रिताल, झपताल और एक तालका अधिक प्रयोग होता है।

धमार : धमार तालमें होलीसम्बन्धी गीत ही धमार कहलाते हैं, जिसमें व्रजकी होलीका वर्णन होता है और ध्रुवपदकी भाँति 'नोम तोम' का आलाप और दून, चौगुन और आड़ इत्यादिमें अनेक प्रकारकी लयकारी होती है।

होली : ठुमरीके ढंगका दीपचन्दी ताल और काफी जैसे रागमें बँधा हुआ, राधा-कृष्ण सम्बन्धी होलीके वर्णनसे युक्त गीत ही होली कहलाता है जिसमें मींड़, खटका, कण और मुर्की आदिका सुन्दर प्रयोग होता है।

चतुरंग : चतुरंगमें चार वस्तुओंका मेल होता है—१. ख्यालके शब्द, २. तराना, ३. पखावज या तबलेके बोल तथा ४. सरगम।

त्रिवट : त्रिवटमें कविता, तराना और पखावज या तबलेकी बोल मिले हुए रहते हैं।

रूपकालाप और रागालाप : प्राचीन संगीत-पद्धतिमें आलापका एक दूसरा प्रकार था जिसे रूपकालाप कहते थे, जिसमें मन्द गतिसे इस प्रकार स्वर लिये जाते थे कि राग या रागिनीका स्वरूप सामने खड़ा हो जाता था। किन्तु जिस गायनमें रागोंके ग्रह, अंश, मन्द्र तारा, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, आडवत्व और ओड़वत्व इन दस गुणोंका प्रकाशन किया जाता है, उसे रागालाप कहते हैं।

गीत, गान्धर्व (गान) : मनका रंजन करनेवाले स्वरसमुदायको गीत कहते हैं। जिसके दो भेद हैं गान्धर्व और गान। जिस अनादि और अपौरुषेय संगीतके प्रयोगसे मोक्ष प्राप्त किया जाता था उसे गान्धर्व और जो संगीत-वाङ्मयकार (पद्य-रचना और स्वर-रचना करनेवाले साहित्य-संगीतके पण्डित) द्वारा लक्षणबद्ध करके देशी राग-रागिनियोंमें लोक-रंजनके लिए प्रयुक्त होता था उसे गान कहते थे। संगीत-रत्नाकरके टीकाकार कल्लिनाथने कहा है कि गान्धर्वको मार्गी या मार्ग और गानको देशी समझना चाहिए। अब तो मार्गी

संगीत पूर्णतः लुप्त हो गया है, केवल देशी संगीतका ही सर्वत्र प्रचार है। शार्ङ्गदेवने भी अपने ग्रन्थमें देशी संगीतका ही विवरण दिया है।

आलप्ति : गन्धर्व और गानके आगे एक और भी संगीतकी सीढ़ी है जिसे आलप्ति कहते हैं और जिसमें रागके आविर्भाव तथा तिरोभावका प्रदर्शन किया जाता है।

संगीत-योजना करते समय इस बातका विशेष विचार करना चाहिए कि किस स्थानपर, किस राग और तालमें, किस गतिसे, किस प्रकारके गीतकी योजना करायी जाय।

रागके भेद : मतंगके मतसे राग तीन प्रकारके होते हैं—शुद्ध, छायालग और संकीर्ण। शास्त्रमें बताये हुए नियमके अनुसार बिना किसी दूसरे रागको मिलाये शुद्ध रूपसे किसी रागको गाकर प्रगट करना ही शुद्ध राग कहलाता है। जिन रागोंमें अन्य किसी रागकी छाया पायी जाय उसे छायालग कहते हैं और जिन रागोंमें बहुतसे रागोंका सम्मिश्रण होता है, उसे संकीर्ण कहते हैं।

औडव, षाडव और सम्पूर्ण राग : शुद्ध छायालग और संकीर्ण राग भी तीन भागोंमें विभक्त हैं—औडव, षाडव और सम्पूर्ण। जिन रागोंमें षड्ज आदि सात स्वरोंमें-से केवल पाँच स्वर व्यवहृत होते हैं उन्हें औडव कहते हैं। जिनमें छः स्वरोंका प्रयोग होता है उन्हें षाडव कहते हैं और जिनमें सातों स्वरोंका प्रयोग होता है उन्हें सम्पूर्ण कहते हैं। इनमें-से कुछ रागोंमें आरोहमें ५ और अवरोहमें ७ स्वर लगते हैं। उन्हें औडव-सम्पूर्ण कहते हैं। इसी प्रकार रागोंकी संख्याके आरोह और अवरोहमें प्रयोगके अनुसार औडव-षाडव, औडव-सम्पूर्ण, षाडव-औडव, षाड्व-सम्पूर्ण, सम्पूर्ण-औडव, सम्पूर्ण-षाडव, औडव-औडव, षाडव-षाडव और सम्पूर्ण-सम्पूर्ण आदि भेद होते हैं।

रागोंकी उत्पत्ति : सभी संगीत-शास्त्रोंके मतसे महादेव और पार्वतीने ही राग उत्पन्न किये हैं। महादेव जीके पाँचों मुखोंमें-से क्रमशः सद्योजात मुखसे श्रीराग, वामदेव मुखसे वसंतराग, अघोर मुखसे भैरव राग, तत्पुरुष मुखसे पंचम राग और ईशान मुखसे मेघराजकी उत्पत्ति हुई और पार्वती जीके मुखसे नट-नारायण रागकी उत्पत्ति हुई। ये छहों तो राग या पुरुष हैं और इन छहोंकी छः-छः स्त्रियाँ या रागिनियाँ हैं। श्री रागकी छः रागिनियाँ हैं—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी। वसंतकी छः रागिनियाँ हैं—देशी, देवकिरी, वर्टी या वराटी, तोड़िका, ललिता और हिन्दोली। भैरवकी छः रागिनियाँ हैं—गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैन्धवी। पंचमकी छः रागिनियाँ हैं—विभाषा, भूपाली, कर्णाटकी, बडहंसिका, मालवी और नट्टमंजरी। मेघकी छः रागनियाँ हैं—मन्दारी, सौराष्ट्री, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी और हरश्रृंगारा। नट्टनारायणकी छः रागनियाँ हैं—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, सारंगी, नट्टहामवीरा।

नारद-संहिताके मतसे मालव, मन्दार, श्री, वसंत, हिन्दोल और कर्णाट वे छः राग हैं। इनमें-से मालवकी रागिनियाँ हैं—धानश्री, मालश्री, रामकिरी, सिन्धुड़ी, आसावरी, भैरवी। मन्दारकी पत्नियाँ हैं—बेलावली, उर्वी, कानड़ा, माधवी, क्रोड़ा और केदारिका।

श्रीरागकी रागिनियाँ हैं—गान्धारी, सुभगा, गौरी, कौमारी, बन्दारी और वैरागी। वसंतकी रागिनियाँ हैं—तुड़ी या तोड़ी, पंचमी, ललिता, पट्टमंजरी, गुर्जरी और विभाषा। हिन्दोलकी रागिनियाँ हैं मालवी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, वराड़ी और मरहट्टा या मारहटी। कर्णाटकी रागिनियाँ हैं—नाटिका, भूपाली, रामकेली, गड़ा और कामोदी।

रागार्णवके मतानुसार सब राग ही हैं। राग और रागिनी नामक कोई भेद नहीं है। उन्होंने छः प्रधान राग माने हैं—भैरव, पंचम, नाट, मल्लार, गौडमालव और देशाख्य। इनमें-से भैरवके आश्रित पाँच राग हैं—बंगाली, गुणकिरी, मध्यादि, वसंत और धानश्री। पंचमके आश्रित हैं—ललिता, गुर्जरी, देशी, वराडी और रामकिरी। नाटके आश्रित हैं—नटनारायण, गान्धार, सालग, केदार और कर्णाट। मल्लारके आश्रित हैं—मेघ, मल्लारिका, मालकौशिक, पट्टमंजरी और आसावरी। गौड मालवके आश्रित हैं—हिन्दोल, त्रिवणी, गान्धारी, गौरी और पट्टहंसिका। देशाख्यके आश्रित हैं भूपाली, कुडारी, नाटिका, और बेलावली।

संगीत-नारायणने अपने संगीतसारमें श्री, नट, कर्णाटक, वेदगुप्त, वसंत, शुद्ध भैरव, सोम, आम्रपंचम, कामोद, मेघ, द्रविडगौड, वराटी, गुर्जरी, तोड़ी, मालश्री, सिन्धवी, देवकिरी, रामकिरी, प्रमथ मंजरी, नट्टा, बेलावली और गौरी आदि रागोंको सम्पूर्ण जातीय माना है।

संगीत-सारमें ही गौड, कर्णाट, गौड, देशी, घल्लासिका, कोलाहल, वल्लारी, देशाख्या, शेखरी, सुस्थावती, हर्षपुरी, माधवादि, हंचिका, श्रीकंठ, माला, तारा, मालवगौड, शुद्धाभीरी-मधुकरी, छाया और नीलोत्पल्ल रागको षाडव जातिका माना है। इन्हें गानेसे संग्राममें विजय, लावण्यकी वृद्धि और सर्वत्र कीर्ति होती है।

मिश्र राग और रागिनी : देशाख्या और मल्लारीके संयोगसे सौरठी; नट और मल्लारके सहयोगसे नट्ट-मलिका; गुर्जरी और देशके मिश्रणसे रामकली; तोड़ी और घल्ला-सिकाके संयोगसे मराठी, देशाख्या और आसावरीके योगसे वल्लारी; श्री और नटके सहयोगसे गौरी; नट और कर्णाटके मिलनेसे कल्याणी; कर्णाट और भैरवके योगसे कर्णाटिका; मल्लारी; सैन्धवी और तोड़ीके सहयोगसे आसावरी; तथा सैन्धव और तोड़ीके सहयोगसे सुखावती इत्यादि मिश्रराग और रागिनियोंकी उत्पत्ति हुई है।

रागोंके गानेका समय : संगीतदर्पणके मतसे दिनमें विभिन्न समय विभिन्न राग गानेका यह विधान किया गया है, मधु-माधवी, देशाख्या, भूपाली, भैरवी, वेलावली, मल्लारी, वल्लारी, सोमगुर्जरी, धानश्री, मालश्री, मेघ, पंचम, देश-कारी, भैरव, ललिता और वसन्त राग-रागिनियाँ प्रातःकालसे लेकर दिनके एक प्रहर तक गायी जाती है। गुर्जरी, कौशिकी, शावेरी, पटमंजरी, रेवा, गुणकिरी, भैरवी, रामकिरी और सौरठी रागिनियाँ दिनके एक प्रहरके बाद दूसरे प्रहरके मध्य गानी चाहिए। वैराटी, तोड़ी, कामोदी, कुड़ारिका, गान्धारी, देशी, शंकराभरण राग-रागिनियाँ दिनके दूसरे प्रहरके बाद तीसरे प्रहरके मध्य गायी जाती हैं। श्री, मालव, गौरी, त्रिवणा, नटकल्याण, सारंगनट, केदारी, कर्णाटी, आभीरी,

बड़हंसी और पहाड़ी राग-रागिनियाँ दिनके तीसरे प्रहरके पश्चात् आधी रात तक गायी जा सकती हैं। परन्तु राजाकी आज्ञा या अनुमतिसे सभी राग-रागिनियाँ सब समय गानेमें कोई दोष नहीं।

पंचमसारसंहिताके मतसे बिभाष, ललिता, कामोदी, पटमंजरी, रामकेलि, रामकिरी, वराटी, गुर्जरी, देशकारी, शुभगा, आभीरी, पंचमी, गड़ा, भैरवी, कौमारी ये पन्द्रह रागिनियाँ पूर्वाह्णमें; वराटी, मालवी, केन्द्रा, रेवती, धानश्री, बेलावली, मरहट्टा ये सात रागिनियाँ मध्याह्नके समय; गान्धारी, दीपिका, कल्याणी, प्रवारी, बरी, आशावरी, कान्दुशा, गौरी केदारी, पाहिड़ा ये रागिनियाँ सायाह्नमें गायी जाती हैं। परन्तु रात्रि दश दण्डके पश्चात् सभी राग गाये जा सकते हैं, उसमें कोई दोष नहीं।

दाक्षिणात्योंके मतसे देशाख्या, भैरवी, देवरवतदंशी, माहुसा और नक्त-रंजिका रागिनियोंको जो व्यक्ति प्रातःकाल गाता है वह अत्यन्त सुखी होता है। सायंकाल इनका गाना अति निषिद्ध है और शुद्धनट्टा, सारंगी, नट्ट-वराटिका, छाया, गौडी, ललिता, मल्लारिका गौरी, तोडिका, गोड, मालवगोड, रामकिरी, कर्णाट और बंगाली रागिनियाँ चन्द्रसे उत्पन्न हैं, इन्हें प्रातःकाल गाना अति निन्दित है इन्हें सायंकाल गानेसे महती लक्ष्मी प्राप्त होती है।

कौमुदीके मतसे श्रीपंचमीसे लेकर दुर्गापूजा तक बसन्त राग दिनमें किसी भी समय गाया जा सकता है, कोई दोष नहीं। प्रभातमें भैरव आदि, मध्याह्नमें वराटी आदि और सायंकाल कर्णाट आदि गाना उचित है।

इस प्रकार संगीत शास्त्रके आचार्योंने गानकालका बहुविध समय निर्णीत किया है। जिस देशमें जिस प्रकार विधि बतलायी गयी है, विज्ञ व्यक्तियोंको चाहिए कि उसी प्रकार कार्य करें।

अकाल गायनका दोष : जिस रागरागिनीका जो समय निर्दिष्ट किया गया है, उसका उल्लंघन करना सर्वनाशका मूल है। हाँ, श्रेणीबद्ध होकर राजाकी आज्ञा वा रंगभूमिमें समयोल्लंघन करनेमें दोष नहीं।

दोषका परिहार : यदि कोई लोभ या मोहवश समयका उल्लंघन करे तो अन्तमें गुर्जरी रागिनी गानेसे समस्त दोषोंका परिहार हो जाता है। किसीका मत है कि अकालमें कोई राग गाने वा सुननेसे जो दोष लगता है, वह महादेवकी पूजा करनेसे दूर हो जाता है।

ऋतु विभाग : सभार्य श्रीराग शिशिर ऋतुमें, सस्त्रीक वसन्त वसन्त ऋतुमें, सपत्नीक भैरव ग्रीष्म ऋतुमें, सदार पंचम शरद्‌ऋतुमें, ससहधर्मिणीक मेघ, वर्षा ऋतुमें तथा सकलत्र नट्टनारायण हेमन्त ऋतुमें इच्छानुसार गाये जा सकते हैं। इस नियमके अनुसार गानेसे श्रोताओंको अधिकतर आनन्द मिलता है।

●

कृष्णभक्त कवि गिरधरदास रचित भारती-भूषण

अगरचन्द नाहटा

हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों और उनके कवियोंका विशेष योग रहा है। श्रीकृष्णका लीलाक्षेत्र मथुरा, वृन्दावनमें उन सम्प्रदायोंके प्रवर्तक वर्षों तक रहे। उनके दीक्षित एवं अनुयायियोंने प्रचुर साहित्यका निर्माण किया और उन सम्प्रदायोंका प्रचार अनेक प्रान्तोंमें होता गया। उन प्रान्तोंके निवासी चाहे हिन्दी भाषा-भाषी न भी हों पर साम्प्रदायिक व्रजभाषाके साहित्यने उनको आकर्षित कर लिया। फलतः गुजरातके कवि दयाराम गुजराती भाषाके साथ-साथ व्रजभाषामें भी काव्य निर्माण करते हैं। व्रजभाषामें राग-रागिनीके पद हजारोंकी संख्यामें रचे गये। इससे संगीत, काव्य और भक्ति तीनोंका सम्मिश्रण हो जानेसे जन-मानसपर उनको गहरी छाप पड़ी। इस तरह हिन्दीके प्रचार एवं साहित्यके विस्तारमें कृष्णभक्त कवियोंका उल्लेखनीय स्थान सिद्ध होता है। रीतिकालमें उन कवियों द्वारा छन्द, अलंकार-सम्बन्धी अनेकों रचनायें लिखी गयीं। जिनमेंसे कुछकी तो १-२ और अपूर्ण प्रतियाँ ही प्राप्त हैं। प्रस्तुत लेखमें वल्लभ-सम्प्रदायानुयायी कवि गिरधरदासके भारती-भूषण ग्रन्थका परिचय दिया जा रहा है जिसका खोज-रिपोर्टोंमें कहीं उल्लेख नहीं देखा गया और जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें भी यह ग्रन्थ पूरा लिखा हुआ नहीं मिला; इसलिए इस ग्रन्थकी अन्य पूरी प्रतिका पता लगाना आवश्यक है। दो वर्ष पूर्व जब विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैनके कालिदास-समारोहमें निबन्ध पाठ करनेके लिए जाना हुआ तो वहाँके सिन्धिया ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूटमें भारती-भूषणकी प्रति देखनेको मिली। यह प्रति १० पत्रोंकी है। पर इसमें भारती भूषण छठे पत्रके प्रारम्भमें ही अपूर्ण रह जाता है यद्यपि उसमें अपूर्ण लेनेकी कोई सूचना या चिह्न नहीं है। पद्यांक १२० जिस पंक्तिमें पूर्ण होता है उसमें पद्यांक देनेके बाद ही सुकवि देवका अष्टजाम ग्रन्थ प्रारम्भ हो जाता है। अर्थात् भारती-भूषणको चलती पंक्तिमें ही अधूरा छोड़ दिया गया है।

रचनाके प्रारम्भमें ही इसका नाम भारती-भूषण लिखा हुआ है। पद्यांक तीनमें ग्रन्थका विषय अलंकार-वर्णन और रचयिताका नाम गिरधरदास दिया है। चौथे पद्यमें भारती-भूषण ग्रन्थका नाम और नवें पद्यमें फिर कवि गिरधरदासका नाम आता है। इसमें उपमा,

प्रतीक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दीपक, आदि अलंकारों और उनके भेद-प्रभेदोंका उदाहरण सहित वर्णन है। लक्षण और उदाहरण एक-एक दोहेमें दे दिये हैं। अर्थात् ग्रन्थ छोटा होनेपर भी महत्वपूर्ण है। पूरा ग्रन्थ कितने पद्योंका है तथा कहाँ कब रचा गया? तथा कविने अन्तमें अपना क्या-क्या परिचय दिया है यह तो दूसरी पूरी प्रति मिलनेपर ही कहा जा सकता है। यहाँ प्रारम्भ और अन्तके कुछ पद्य दिये जा रहे हैं। अथ भारती-भूषण लिख्यते-दोहा—

श्री वल्लभ आचार्य के, भजत भजत सब पाप।
श्री वल्लभ करुणा करत, हरत सकल संताप॥ १॥
बिधि भव तरनी हम लही, जम गरूर करु नाहिं।
विधि भव तरनी नमत निति, हरि पद मम उर माँहि॥ २॥
मोहन मन मानी सदा, वानी को करि ध्यान।
अलंकार बरनन करत, गिरिधर दास सुजान॥ ३॥
सुन्दर बरन नगन रचित, भारति भूषण एहु।
पढ़हु गुनहु सीखहु सुनहु, सत कवि सहित सनेह॥ ४॥

अथोपमालक्षण

सो उपमा जहँ बरनिए, उपमेय रु उपमान।
समताई सोभित सदा, इमि कवि कहहि सुजान॥ ५॥

उदाहरण यथा

आनन पंचानन तिलक, पंचानन कटि सोह।
खरी रमा-सी राधिका, भरी मोद संदोह॥ ६॥

साधु संग पाएउ नहिं, खलको खलपन जाइ।
सुधा पियायहु अहि नहीं, तजैं गरल दुखदाइ॥ ११०॥
दृष्टान्त-वर्ण्य अवर्ण्य दुहूनकौ भिन्न धर्म दरसाइ।
जहाँ बिंब प्रतिबिंब सौ, सो दृष्टान्त कहाइ॥ ११९॥

उदा०— रूपवती तुम ही अहौ, रती जसवती जानि।
नृप तुम ही दानी अहौ, मानौ सुरतरु मानि॥ १२०॥

●

नीतिवचनामृत

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव च ।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥

जो बहुत धन विद्या तथा ऐश्वर्यको पाकर भी उद्दण्डतापूर्वक नहीं चलता, वह पण्डित कहलाता है ।

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम् ॥

किसी धनुर्धर वीरके द्वारा छोड़ा हुआ वाण संभव है, एकको भी मारे या न मारे । परन्तु बुद्धिमान् द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजासहित संपूर्ण राष्ट्रका विनाश कर सकती है ।

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥

जो स्वयं दोषयुक्त वर्ताव करते हुए भी दूसरोंके दोष बताकर उनपर आक्षेप करता है, तथा जो असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है ।

[महाभारत उद्योगपर्व]

गृहिणीका सदाचार

गृहिणीनां सदाचारं श्रूयतां तच्छ्रुतौ श्रुतम् ।
गृहिणी पतिभक्ता च देवब्राह्मणपूजिका ॥
सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम् ।
प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद् गोमयेन जलेन च ॥
गृहकृत्यं च कृत्वा स्नात्वाऽऽगत्य गृहं सती ।
सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेद् गृहदेवताम् ॥
गृहकृत्यं सुनिर्वृत्य भोजयित्वा पतिं सती ।
अतिथिं पूजयित्वा च स्वयं भुङ्क्ते सुखं सती ॥

गृहस्थ-पत्नियोंका जो सदाचार श्रुतिमें वर्णित है, उसे सुनो—गृहिणी नारी पतिपरायणा तथा देवता-ब्राह्मणकी पूजा—सत्कार करनेवाली होती है। उस शुद्धाचारिणीको चाहिए कि प्रातःकाल उठकर देवता और पतिको नमस्कार करके आँगनमें गोबर और जलसे लीपकर मङ्गल कार्य सम्पन्न करे। फिर गृहकार्य सम्पन्नकरके स्नान करे और घरमें आकर देवता, ब्राह्मण एवं पतिको प्रणाम करके गृहदेवताकी अर्चना करे। इस प्रकार सती नारी घरके सारे कार्योंसे निवृत्त होकर पतिको भोजन कराती है और अतिथि-सेवा करनेके पश्चात् स्वयं सुखपूर्वक भोजन करती है।

[ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८४.१४–१७]

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधर शर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस ढुण्ढिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित